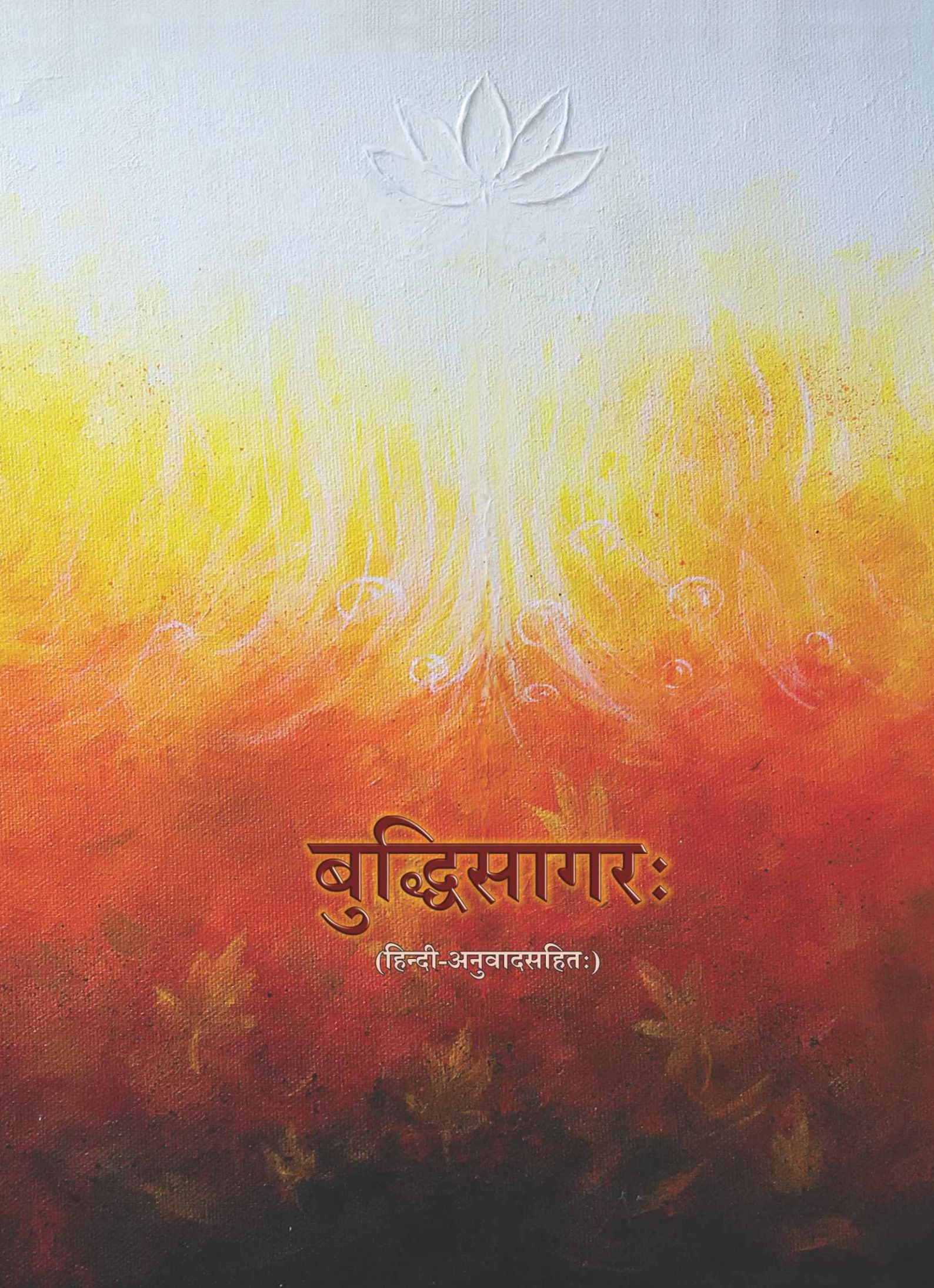

बुद्धिसागरः

(हिन्दी-अनुवादसहितः)

कवि-सङ्ग्रामसिंहसोनी-विरचितः

बुद्धिसागरः

(हिन्दी-अनुवादसहितः)

श्रुतभवन संशोधन केन्द्र

पुणे

ग्रंथनाम : **बुद्धिसागर**

विषय : **उपदेश, नीति**

कर्ता : **कवि संग्रामसिंह सोनी**

संपादक : **मुनिवैराग्यरतिविजयगणी**

प्रकाशक : **© श्रुतभवन संशोधन केन्द्र**

पत्र : ३०+९८=१२८

आवृत्ति : प्रथम, वि.सं.२०७२, ई.२०१६

मूल्य : १०० रु.

~: प्राप्तिस्थल :~

पूना : **श्रुतभवन संशोधन केन्द्र,**
४७/४८ अचल फार्म, आगममंदिर से आगे,
सच्चाइ माता मंदिर के आगे, कात्रज, पुणे-४११ ०४६
Mo. 7744005728 (9-00 a.m. to 5-00 p.m.)

अहमदाबाद : **श्रुतभवन (अहमदाबाद शाखा)**
उमंग शाह, अर्हम् फ्लेक्सीपेक, २०१, तीर्थराज कोम्प्लेक्स, एलीसब्रीज,
वी. एस. हॉस्पिटल के सामने, मादलपुर, अहमदाबाद-६
Mo. 9825128486

मुंबई : **श्री गौरवभाई शाह**
सी/१११, जैन एपार्टमेंट, ६० फीट रोड,
देवचंद नगर रोड, भायंदर (वेस्ट)
मुंबई-४०११०१. मो.०९८३३१३९८८३

सुरत : **श्री मितुलभाई धनेशा**
C/o. सिया मेन्युफेक्चरींग, सुखदेव कोम्प्लेक्स, २ री मंझिल,
टोरंट पॉवर हाऊस के पास, वास्तादेवी रोड, कतारगाम, सुरत-३९५००४
मो. ०९३७७०५९६७३

मुद्रण : **धर्मेश पटेल,** अहमदाबाद

प्रकाशकीय

अनुवाद सहित **बुद्धिसागर** श्री संघ के करकमल में समर्पित करते हुए हमें आनन्द की अनुभूति हो रही है। श्रुतभवन संशोधन केन्द्र के सन्निष्ठ समर्पित सहकारिगण की कडी महेनत और लगन से यह दुर्गम कार्य सम्पन्न हुआ है। इस अवसर पर श्रुतभवन संशोधन केन्द्र के संशोधन प्रकल्प हेतु गुप्तदान करने वाले दाता एवं श्रुतभवन संशोधन केन्द्र के साथ प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से जुडे हुए सभी महानुभावों का हार्दिक अभिनन्दन करते है। हम उन संस्था एवं विद्वानों के भी आभारी है जो हमारा मार्गदर्शन और सहाय करते है-

पू.आ.श्री कैलाससागरसूरिजी ज्ञानमंदिर,श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा।

श्री लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर, अमदावाद।

भाण्डारकर प्राच्यविद्या संशोधन संस्थान,पुणे

पद्मश्री कुमारपाळ देसाई, डॉ. श्री जितेन्द्र बी. शाह, श्री बाबुभाई सरेमलजी ।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन का अलभ्यलाभ सरस्वतीलब्धप्रासाद परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय **रत्नसुंदरसूरीश्वरजी** म.सा.की पावन प्रेरणा से **श्री माटुंगा जैन श्वेतांबर मूर्तिपूजक तपगच्छ संघ माटुंगा, मुंबई** ने ज्ञानद्रव्य से प्राप्त किया है। आपकी अनुमोदनीय श्रुतभक्ति के लिये हम आपके आभारी है।

भरत जगमोहनदास शाह
(मानद अध्यक्ष)

श्रुतप्रेमी

सरस्वतीलब्धप्रासाद परम पूज्य

आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसुंदरसूरीश्वरजी म.सा.की

पावन प्रेरणा से

श्री माटुंगा जैन श्वेतांबर मूर्तिपूजक तपगच्छ संघ

माटुंगा, मुंबई

(ज्ञानद्रव्य से)

श्रीसङ्ग्रामसोनीविहितस्य बुद्धिसागरस्योपक्रमः

ग्रन्थोऽयं यथार्थाभिधानो बुद्धिसागरो विपश्चितामुपदीक्रियमाणः गृह्यतां करकुशेशये कोविदैः।

अस्मिन् हि ग्रन्थरत्ने श्रीमद्भिः सङ्ग्रामसिंहैः प्रकरणापराभिधानास्तरङ्गा निवेशिताश्चत्वारः, ते च क्रमेण धर्मनयव्यवहारप्रकीर्णकाख्याः।

यद्यपि लघुतमोऽयं ग्रन्थस्तथापि चाणक्यकामन्दक्यादिनीतिशास्त्राणामिव शिशूनां व्यवहार-परायणानां चातीव उपयुक्त इति मुद्रणमस्यादृतं संस्थयाऽनया।

यथायथं लोकोपयोगिनः सर्वेऽपि विषया अस्मिन् निवेशिता इति ग्रन्थः पाठोपयुक्तोऽयम्।

कर्ता चास्यालावदीनसत्कसाङ्गणान्वयी श्रीनरदेवतनूजः सङ्ग्रामसिंहो मालवाधिपमहमूद-भाण्डागारिको येन श्रीमक्षीपार्श्वचैत्यं समुद्दध्रे।

कृतिश्चास्य निजामजययात्रायां प्रतिष्ठानपुरे इति स्पष्टं प्रशस्तावस्य[१]।

१९९३ वैशाख शुक्ला १३

निवेदका
आनन्दसागराः

१. मुद्रिताया आवृत्तेरुपोद्घातः।

कृतज्ञता

मेरे परम उपकारी परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय **रामचंद्रसूरीश्वरजी महाराजा,** पितृगुरुदेव परम पूज्य मुनिप्रवरश्री **संवेगरति विजयजी** म.सा.की पावन कृपा, बंधुमुनिवरश्री **प्रशमरतिविजयजी** म.का स्नेहभाव मुनिराजश्री **संयमरतिविजयजी** तथा पू. आ. श्री विजय **अभयदेवसू.म.** के शिष्य मुनिराजश्री **जिनरत्नविजयजी** म. के शिष्य मुनिराजश्री **प्रभुशासनरत्नविजयजी** म. एवं परम पूज्य साध्वीजी **श्रीहर्षरेखाश्रीजीम.** की शिष्या साध्वीजी **श्रीजिनरत्नाश्रीजीम.** का निरपेक्ष सहायकभाव मेरी प्रत्येक प्रवृत्ति की आधारशिला है। आपके उपकारों से उऋण होना संभव नहीं है।

संपादन के इस कार्य में मुझे **पूज्य आ.श्री मुनिचंद्रसू.म.** का मार्गदर्शन, प्रेरणा एवं सहायता प्राप्त होती रही है। आपकी उदारचित्तता को शत शत नमन। संपादन कार्य में श्रुतभवन संशोधन केन्द्र के सभी संशोधन सहकर्मिओं ने भक्ति से सहकार्य किया है, अतः वे साधुवादार्ह है।

- वैराग्यरतिविजय
श्रुतभवन,पुणे
२७.५.१३

संपादकमंडल

मुनिश्री वैराग्यरतिविजयगणि (अभिवीक्षक),

अमित उपाध्ये (संपादन सहायक) **शैलेश शिंदे** (प्रकल्प प्रमुख) **तुषार सुर्वे** (अनुवाद सहायक)

अतुल मस्के (अनुवाद सहायक) **विनय गायकवाड** (अनुवाद सहायक) **दिनेश उदागे** (अनुवाद सहायक)

शैलेश पवार (सहायक), **कृष्णा माळी** (सहायक), **गणेश खेडकर** (सहायक),

भालचंद्र रोडे (सहायक), **भूपत वंश** (सहायक), **भरत शिंदे** (सहायक)

सिद्धनाथ गायकवाड (प्रबंधन सहायक) **वर्धमानजिनरत्नकोश विभाग** (सहायक)

संपादकीय

प्रस्तावना

संस्कृत वाङ्मय में नीतिशास्त्र पर विपुल मात्रा में साहित्य का निर्माण हुआ है। चाणक्यनीति, कामन्दकीय नीतिसार आदि उसी प्रकार के ग्रंथ है। जैन परम्परा में भी नीतिशास्त्र पर रचना मिलती है। इस में सर्वप्रथम आचार्य सोमदेवसूरि का कार्य महत्त्वपूर्ण है। जिस प्रकार चाणक्य ने चन्द्रगुप्त के लिए अर्थशास्त्र की रचना की उसी प्रकार आचार्य सोमदेवसूरिजी ने राजा महेन्द्र के लिए नीतिवाक्यामृत ग्रंथ की रचना की। अल्पाक्षरी और मनोरम होने के कारण कौटिल्य अर्थशास्त्र से भी ज्यादा सरस लगता है। इस ग्रंथ पर हरिबल इस विद्वान ने टीका लिखी है। प्राकृत साहित्य में बृहदर्हन्नीतिशास्त्र इस ग्रंथ के आधार पर आचार्य हेमचंद्रसूरिजी ने लघु-अर्हन्नीति यह संस्कृत पद्यात्मक छोटा ग्रंथ लिखा। महाराज कुमारपाल के लिए यह ग्रंथ निर्माण हुआ। धर्म के अनुसार राजनीति का उपदेश इस ग्रंथ में किया गया है।

बुद्धिसागर यह उसी में से एक प्रयत्न है। संग्रामसिंह सोनी के द्वारा लिखित बुद्धिसागर ग्रंथ विविध विषयों से समृद्ध है। नीति के साथ ही अन्य विषयों पर इस ग्रंथ में विचार किया गया है।

जिनरत्नकोश[१] इस नाम से जैन हस्तलिखित की बृहत् सूचि तैयार की गई है। इसमें बुद्धिसागर नाम से तीन कृतियों का उल्लेख है। १) आ.श्रीबुद्धिसागरसू. कृत बुद्धिसागर व्याकरण २) संग्रामसिंह सोनी कृत बुद्धिसागर। ३) अज्ञात कर्तृक बुद्धिसागर

पार्श्वभूमि

प्रस्तुत ग्रंथ सामान्यरूप से दुर्लक्षित रहा है ऐसा प्रतीत होता है। ई.स.१९३६ में एक हस्तप्रत के आधार पर इस ग्रंथ का संपादन पूज्य आचार्य श्रीआनंदसागरसूरीश्वरजी म.ने किया जिसका प्रकाशन ऋषभदेव केसरीमलजी श्वेतांबर संस्था, रतलाम द्वारा वि.सं.१९९३ (ई.१९३६)में हुआ है। पूज्य आचार्य भगवंत ने किस हस्तप्रत के आधार से संपादन किया है? यह लिखा नहीं अतः इस ग्रंथ का संशोधित पाठ तैयार करने हेतु विविध हस्तलिखित ग्रंथभंडार में उपलब्ध सभी हस्तप्रतों का अभ्यास करके इस ग्रंथ का एक सर्वमान्य, संशोधित और चिकित्सक पाठ निश्चित करना इस संपादन का हेतु है। यह ग्रंथ धर्म और व्यवहार दोनों स्तर पर महत्त्व का है। सर्वजन-उपयोगी और सर्वजन-ग्राह्य नीतिपरक उपदेश प्रस्तुत ग्रंथ का विषय है अतः इसका भाषांतर भी किया है।

---

१. सं.-हरि दा. वेलणकर, प्र.भांडारकर प्राच्यविद्या संशोधन संस्था

संशोधन का उद्देश्य

जैन संस्कृत वाङ्मय के नीतिशास्त्र के ग्रंथ आज भी अधिकतर प्रकाशित नहीं हुए। इसी के साथ इस ग्रंथ के कर्ता अल्पपरिचित है। सामान्यरूप से जैन वाङ्मय के ग्रंथकर्ता साधु-आचार्य ही रहते है। मात्र इस ग्रंथ के कर्ता संग्रामसिंह सोनी गृहस्थ है। इस ग्रंथ से संग्रामसिंह सोनी की जानकारी मिलती है। इस कारण से भी यह ग्रंथ महत्त्वपूर्ण है। इस संशोधन के कारण जैन संस्कृत साहित्य के इतिहास में महत्त्वपूर्ण योगदान होगा।

संशोधन के आवश्यक साधन

प्रस्तुत संशोधन के लिए इस ग्रंथ के विविध भंडार में से कुल आठ हस्तप्रतों का उपयोग किया है। जिनरत्नकोश में बडोदा, सुरत, महेसाणा, खंभात आदि स्थान में भी इस ग्रंथ की हस्तप्रत का उल्लेख है। मद्रास विश्वविद्यालय के ओर से प्रकाशित NCC (National Catalogues Catalogrum) सूचिपत्र के चौदवें (१४) खंड के अनुसार लाहोर (पंजाब) जैन भंडार, Archibald Edward Grough कलकत्ता आदि स्थानों पर इस हस्तप्रत का उल्लेख है।

हस्तप्रत का भौतिक विवरण

१) **हस्तप्रत भंडार का नाम-** भांडारकर प्राच्यविद्या संशोधन संस्था, पुणे

हस्तप्रत का संक्षिप्त नाम- भां२९६, **हस्तप्रत का संदर्भांक-** १८७१-७१/२९६, **पत्रसंख्या-** १५ (पूर्ण), **प्रतिपृष्ठ पंक्तिसंख्या-** ११, **प्रतिपंक्ति अक्षरसंख्या-** ४८, **स्थिति-** उत्तम, **लेखन प्रशस्ति**- नहीं है।

२) **हस्तप्रत भंडार का नाम-** ओरिएन्टल इन्स्टिट्यूट(संस्कृत विभाग), महाराज सयाजीराव युनिवर्सिटी, बडोदा, गुजरात।

हस्तप्रत का संक्षिप्त नाम- ओ २८७८, **हस्तप्रत का संदर्भांक-** २८७८, **पत्रसंख्या-** २९,प्रतिपृष्ठ **पंक्तिसंख्या-** ९, **प्रतिपंक्ति अक्षरसंख्या-** २८, **स्थिति-** उत्तम, **लेखन प्रशस्ति-**

॥शार्दूलविक्रीडितम्॥

अस्ति श्रीवटपत्तने क्षितिपतिः श्रीमान् मनीषी वशीकर्तुं पुस्तकसङ्ग्रहं धृतरतिर्ग्रन्थालये वै निजे।

भर्ता गुर्जरनीवृतोऽखिलकलाविद्यादिरक्तः सदा ख्यातो यश्च शियाजिराववसुधाधीशो गुणैरुज्ज्वलैः॥१॥

॥उपगीति॥ तच्छिष्यो गोसाई यस्वन्तभारतीशिष्यः। नारायणपदपूर्वो भारतीः कोविदप्रसङ्गी॥२॥

॥अनुष्टुप्॥ व्योमवेदाङ्कशुभ्रांशुसख्येषु हायनेषु च। गतेषु विक्रमान्नूनं दुर्मुखाभिधवत्सरे॥३॥

माघमासेऽसिते पक्षे तृतीयायां गुरोर्दिने। पत्तनेऽसोऽणहिल्लाख्ये ग्रन्थमेतमलीलिखत्॥४॥
ग्रन्थाग्रन्थश्लोकसङ्ख्या ४०२।

३) **हस्तप्रत भंडार का नाम-** आ. श्री. कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर, श्री महावीर जैन आराधना केंद्र, कोबा, गांधीनगर, गुजरात।

हस्तप्रत का संक्षिप्त नाम- को१५९३२, **संदर्भांक-** १५९३२, **पत्रसंख्या-** १९, **प्रतिपृष्ठ पंक्तिसंख्या-** १२, **प्रतिपंक्ति अक्षरसंख्या-** ३३, **स्थिति-** उत्तम, **लेखन प्रशस्ति-** प्रत २) के समान। लिखितंग लयाराम धनजी

४) **हस्तप्रत भंडार का नाम-** आ. श्री. कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर, श्री महावीर जैन आराधना केंद्र, कोबा, गांधीनगर, गुजरात

संक्षिप्त नाम- को२०००८, **संदर्भांक-** २०००८, **पत्रसंख्या-** १५, **प्रतिपृष्ठ पंक्तिसंख्या-** १३, **प्रतिपंक्ति अक्षरसंख्या-** ४४ **स्थिति-** उत्तम, **लेखन प्रशस्ति-** प्रत २) के समान

५) **हस्तप्रत भंडार का नाम-** मोहनलाल जैन श्वेतांबर ज्ञानभंडार, गोपीपुरा, सुरत

संदर्भांक- पो./७६/५०५, **पत्रसंख्या-** १७, **प्रतिपृष्ठ पंक्तिसंख्या-** १२, **प्रतिपंक्ति अक्षरसंख्या-** ३५, **स्थिति-** उत्तम, **लेखन प्रशस्ति-** प्रत २) के समान। लया॥ जेनरायण संम(व)त १९५९रा मीती काती वदी ४

६) **हस्तप्रत भंडार का नाम-** मोहनलाल जैन श्वेतांबर ज्ञानभंडार, गोपीपुरा, सुरत

संदर्भांक- पो./७६/५०६, **पत्रसंख्या-** १७, **प्रतिपृष्ठ पंक्तिसंख्या-** १२, **प्रतिपंक्ति अक्षरसंख्या-** ३५, **स्थिति-** उत्तम, **लेखन प्रशस्ति-** नही है।

७) **हस्तप्रत भंडार का नाम-** मोहनलाल जैन श्वेतांबर ज्ञानभंडार, गोपीपुरा, सुरत

संदर्भांक- पो./७६/५०७, **पत्रसंख्या-** ११, **प्रतिपृष्ठ पंक्तिसंख्या-** १४, **प्रतिपंक्ति अक्षरसंख्या-** ४८, **स्थिति-** उत्तम, **लेखन प्रशस्ति-** प्रत २) के समान।

८) **हस्तप्रत भंडार का नाम-** जैनानन्द पुस्तकालय, गोपीपुरा, सुरत

संदर्भांक- ९१२, **पत्रसंख्या-** ७, **प्रतिपृष्ठ पंक्तिसंख्या-** १९, **प्रतिपंक्ति अक्षरसंख्या-** ६० **स्थिति-** उत्तम, **लेखन प्रशस्ति-** प्रत २) के समान।

सभी हस्तप्रत कागज की है और लिपि देवनागरी है। अक्षर सुवाच्य एवं बहुधा स्पष्ट है।

हस्तप्रत का आंतरिक विवरण

उपयुक्त आठ हस्तप्रत में क्रमांक १ एवं क्रमांक २ उपलब्ध हस्तप्रतों में प्राचीनतम लगती है। क्रमांक १ में लेखनकाल का उल्लेख नहीं है फिर भी अनुमान से पंद्रहवी-सोलहवी शताब्दि की लगती है। अर्थात् कृतिरचना समय (वि.सं.१३८५) के करीब है।

क्रमांक २ हस्तप्रत वि.सं.१९४० में लिखी गई है। लेखन प्रशस्ति के अनुसार यह हस्तप्रत वडोदरा के राजा सयाजीराव ने अपने ग्रंथालय में संग्रह करने हेतु लिखवाई है। गोस्वामी यशवंतभारती के शिष्य गोस्वामी नारायणभारती ने वि.सं.१९४० में दुर्मुख नामक वर्ष में माघ महिने की तृतीया तिथि में गुरुवार के दिन अणहिलपुर पाटण में लिखी है। हस्तप्रत क्रमांक ३, ४, ५, ७, और ८ में यही लेखन प्रशस्ति मिलती है। हस्तप्रत

क्रमांक ५ वि.सं. १९५९ कार्तिक वद ४ के दिन जयनारायण ने लिखी है। हस्तप्रत क्रमांक ३ लयाराम धनजी ने लिखी है। हस्तप्रत क्रमांक ५ में लेखन प्रशस्ति से पूर्व लया ऐसे अक्षर दिखते है अतः यह अनुमान हो सकता है कि यह हस्तप्रत, हस्तप्रत क्रमांक ३ की प्रतिकृति है। इस अवलोकन से यह नतीजा नीकलता है कि— हस्तप्रत क्रमांक २, ३, ४, ५, ७, और ८ एक कुल की है। हस्तप्रत क्रमांक १ और ६ एक कुल की है। हस्तप्रत क्रमांक १ और ६ का कुल प्राचीन है। उपयुक्त आठ हस्तप्रत में हस्तप्रत क्रमांक १, २, ३ और ४ संशोधित है। हस्तप्रत क्रमांक ३ में लेखकने नहीं समज में आने वाले पाठ की जगह खाली रखी है। हस्तप्रत क्रमांक २ में कीसी वाचकने पेन्सील से कठिन शब्द के अर्थ लिखे है।

समीक्षात्मक संपादन

भारत की समृद्ध ज्ञानपरंपरा में असंख्य हस्तप्रत लिखी गई है। इन हस्तप्रतों का रक्षण, देखभाल और उस पर अध्ययन करने के लिए हस्तलिखितशास्त्र का उदय हुआ। किसी भी हस्तलिखित का सर्वमान्य पाठ निश्चित करना यह हस्तलिखितशास्त्र के क्षेत्र में आता है। इसी को चिकित्सक संपादन कहते है। एक ही ग्रंथ की अनेक क्षेत्र में अलग-अलग समय में लिखी हुई अनेक हस्तप्रत होती है। परंतु सर्व हस्तलिखितों में समान ही पाठ(Text) रहता है ऐसा नहीं है। विविध कारणों से मूल ग्रंथ में अनेक अशुद्धि, प्रक्षेपक भाग मिलता है। इसी कारण मूलपाठ निर्धारण यह हस्तलिखितशास्त्र का महत्त्व का अंग है। इसी को हस्तलिखितशास्त्र में चिकित्सक संपादन या समीक्षात्मक संपादन कहते है। चिकित्सक संपादन की व्याख्या इस प्रकार है—

Textual Criticism is methodical exercise of human intellect on the settlement of texts.

मानवीय बुद्धि के द्वारा किसी भी ग्रंथ का पाठनिर्धारण के लिए विशिष्ट शास्त्रीय पद्धति के द्वारा किया गया प्रयत्न पाठसंपादन है ऐसा कहते है।

संपादन की पद्धति

उपलब्ध हस्तप्रत के आधार पर चिकित्सक संपादन करते समय सारग्राही संपादन पद्धति का उपयोग किया गया है।

प्रस्तुत संपादन प्रधानतया हस्तप्रत क्रमांक १ और २ के आधार पर किया है। प्राचीन कुल की हस्तप्रत के पाठ को प्रधान गिना है। पाठ संशोधन हेतु हस्तप्रत क्रमांक ३ और ४ का आधार लिया है। अन्य हस्तप्रत नवीन एवं अनुकरणात्मक है अतः आवश्यकतानुसार उनका उपयोग किया है।

पूज्य आचार्य श्रीआनंदसागरसूरीश्वरजी म.का मुद्रित संपादन हस्तप्रत क्रमांक १ अथवा ६ के आधार पर हुआ है ऐसा लगता है।

नवीन कुल की प्रत में कुछ एक पाठ छूट गया है। (द्रष्टव्य श्लोक—१७७(२.९०), १९४(२.१०७), २०४ (३.१०), २१८(३.२४), २२२ (३.२८), २२३ (३.२९), २२५(३ ३१) इत्यादि) हमने हस्तप्रत क्रमांक १ (भां२९६) का पाठ आधारभूत माना है।

अशुद्ध प्रतीत होने वाले पाठ के बाद ( ) अर्धवृत्ताकार कोष्ठ में शुद्ध प्रतीत होने वाला पाठ रखा है।

पतित पाठ [ ] चौरस कोष्ठ में रखा है।

अधिक पाठ { } धनुषाकार कोष्ठ में रखा है।

संस्कृत के प्रारंभिक अभ्यासकों की सुविधा हेतु श्लोकों का अन्वय किया है।

संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ पाठकों के लिये हिंदी भाषा में भावानुवाद प्रस्तुत है। अनुवाद के लिये अनेक प्रकारकी सहायक सामग्री (Testimonia) का आधार लिया है।

परिशिष्ट-१ में श्लोकों का अकारादि क्रम है।

परिशिष्ट-२ में संदर्भग्रंथ सूचि है।

बुद्धिसागर ग्रंथ नैतिक उपदेश के साथ एक ऐतिहासिक संदर्भ लेकर आता है। इस ऐतिहासिक संदर्भ को समजे बिना बुद्धिसागर का यथार्थ मूल्यांकन नही हो सकता। जिस समय में बुद्धिसागर की रचना हुइ उस के समग्र परिवेश से अवगत होना आवश्यक है। बुद्धिसागर के रचयिता कवि संग्रामसिंह सोनी एक राजनीति में व्यस्त गृहस्थ थे। तत्कालीन राजनीति में सामरिक रूप से मालवा भारत का केंद्रवर्ती था और मालवा के केंद्रवर्ती संग्रामसिंह सोनी थे। इस ग्रंथ का विषय भी रोचक है। प्रास्ताविक सामग्री में इन सभी विषयों के अनुरूप लेख प्रस्तुत है। 'मध्यकालीन भारत' नामक लेख ग्रंथ, ग्रंथकार और की पार्श्वभूमि को उजागर करता है। यह लेख Jainism In Medieval India (1300-1800) (आंग्लानुवाद-एस. एम. पहेदिया)का सारोद्धार है। हम ऐसे अभ्यासपूर्ण लेख के लेखक प्रति कृतज्ञ है। 'संग्रामसिंह सोनी' नामक लेख में ग्रंथकार की ऐतिहासिक और धार्मिक पृष्ठभूमि परिलक्षित होती है। इस के लेखक श्रीभद्रबाहुविजय है। यह लेख आनंद-कल्याण(वर्ष-१ अंक-२) से उद्धृत है। आनंदजी कल्याणजी पेढी ने इसे प्रगट करने की अनुमति प्रदान की अतः हम लेखक एवं पेढी के कृतज्ञ है। परिचय में बुद्धिसागर का आंतरिक अवलोकन है।

संदर्भ सामग्री के अभाव से चाहते हुए भी हम विषय के अनुरूप सभी संदर्भ प्रस्तुत नहीं कर पाये इसके लिये क्षमा चाहते है।

प्रस्तुत सम्पादन बुद्धिसागर के भावार्थ को समझने में सहायक होगा ऐसे विश्वास के साथ विद्वत्पुरुषों को प्रार्थना करते है कि सम्पादन में रह गई त्रुटियों को सुधारकर हमें सूचित करने का अनुग्रह करें।

-सम्पादकगण

मध्यकालीन भारत में जैनधर्म

ई.स. १३०० से ई.स. १८०० तक ५०० साल का कालखंड मध्ययुग के नाम से प्रसिद्ध है। इस युग में भारत की धार्मिक परंपरा दो भाग में विभक्त थी। एक, हिंदुधर्म (सनातनधर्म) दो, जैनधर्म। इससे बहुत पहले ही बौद्धधर्म भारत से अदृश्य हो गया था। इस कालखंड में भारत ने समाज और संस्कृति के स्तर पर बहुत बडा परिवर्तन अनुभव किया। इस्लाम के आक्रमणने भारत की समूची जीवनशैली को बदल दिया। भारत में इस्लामिक आक्रमण चार खंड में हुआ। आरब, तुर्क, मुगल और अफघान। अलग अलग भूमि से आये हुए इस्लामिक आक्रांताओनें भारत को पराजित किया इतना ही नहीं भारत को सत्ता के बल पर इस्लामिक राष्ट्र बनाने का प्रयास भी किया।

भारत में इस्लामिक राज्य के दौरान जैनों की आबादी बडी मात्रा में कम हो गयी। भारतीय संस्कृति और धर्म के प्रतीक समान मंदिरों का विनाश किया गया या तो फिर उसे मस्जिदों में परिवर्तित किया गया[१]। जैनधर्म भी इस्लाम की आंधी के चपट में आ गया। जैनधर्म के नेतृत्व की दूरदृष्टि के कारण इस विनाश से कुछ अंश में बचने में सफल हुआ। उस समय जैन धर्मावलंबियों की जनसंख्या पर्याप्त मात्रा में थी, जैन श्रेष्ठिओं का राजनैतिक प्रभुत्व था। जैन समाज तब भी आर्थिक रूप से अत्यधिक संपन्न था। अतः इस्लाम की आंधी का असर उत्तर भारत, मध्य भारत, दक्षिण भारत में हुआ, पश्चिम भारत में असर कम हुआ।

यहां पर तत्कालीन ऐतिहासिक पार्श्वभूमि में भारत की राजनैतिक स्थिति को समजना प्रस्तुत होगा। सन् १२०६ में भारत के इतिहास में निर्णायक मोड आया जब दिल्ली की सल्तनत भारत की केंद्रवर्ती सत्ता बनी। अल्लाउद्दीन खीलजी (१२९६ से १३१६) के समय दौरान उत्तर भारत में राजपूतों की सत्ता का अस्त हुआ। नर्मदा नदी के किनारी राज्यों से लेकर दूर दक्षिण तक के विभिन्न क्षेत्र में विभिक्त राज्य इस विध्वंस को साक्षी बनकर देखते रहे। अल्लाउद्दीन खीलजी के बाद तुघलक वंश के सत्तासमय में दिल्ली सल्तनत ने निर्बलता, अनिश्चितता और उदासीनता से भरे राज्यों पर आक्रमण किया। तुघलक वंश का सत्ताकाल समाप्त होने पर जौनपुर, बिहार, बंगाल, गुजरात और मालवा में स्वतंत्र मुस्लीम राज्यों का उदय हुआ। पर इन सब स्वतंत्र आक्रांताओं के लिये परिस्थिति अनुकूल नहीं थी। पश्चिम भारत के राजपूत राजाओंने मुस्लीम आक्रांताओं की बर्बरता का कसके सामना किया और अपनी स्वायत्तता को बरकरार रखा। इस कालखंड में राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में भारत के दो सत्ताकेंद्र थे। एक बहमनीओं का मुस्लीम साम्राज्य और दो, विजयनगर का हिंदु साम्राज्य। ईसा की सोलहवी शताब्दी में बहमन साम्राज्य का अस्त हो गया। किसी भी तरह से विजयनगर के साम्राज्य को

१. इस विषय की विशेष जानकारी के लिये देखो संदर्भ- हिंदुमस्जिद, ले. प्रफुल्ल गोरडिया,प्रका.नवभारत साहित्य मंदिर।

परास्त करने में बहमनी साम्राज्य सफल हुआ था। ई.स. १५२६ में बाबर ने भारत पर हमला किया। उसके साथ ही मुगल साम्राज्य का प्रारंभ हुआ। दिल्ली और आगरा सत्ता के मुख्य केंद्र बनें। बाबर के पश्चात् उसका पुत्र हुमायूं (१५३० से १५४०, १५५५ से १५५६) अकबर (२७.१.१५५६ से २९.१०.१६०५) जहांगीर (१५.१०.१६०५ से ८.११.१६२७) शहाजहां (१९.१.१६२८ से ३१.७.१६५८) और औरंगजेब (१६५८ से १७०७) शासक बने। औरंगजेब के पश्चात् मुगल साम्राज्य का अस्त हुआ। परिस्थिति का फायदा उठाकर बहुत सारे क्षत्रप(शासक) स्वतंत्र हो गये। इसको अंतिम परिणाम स्वरूप ब्रिटीश हकुमत को भारत में सत्ता हासिल करने का मौका मिला।

यह मध्यकाल के इतिहास का सामान्य सर्वेक्षण है। यह कालखंड के इतिहास को एक या दूसरी तरह से जैन धर्मावलंबियोंने तथा जैन नेतृत्व के राजकीय संबंधों ने प्रभावित किया था। इस विषय पर कुछ विस्तृत विवरण प्रस्तुत है।

जैनधर्म बनाम दिल्ली सल्तनत।

लोदी वंश (१४५१ से १५२६) के राज्यकाल दौरान दिल्ली के सभी शासक तुर्कवंश के थे। वे इस्लाम के कट्टर अनुयायी थे और हिंदु और जैनियों के प्रति असहिष्णू थे। उनके अनुसार हर एक भारतीय काफिर था। अपने धार्मिक राजकीय और सामरिक हेतु को सिद्ध करने के लिये वे गैर-मुस्लिम का वध करने से और गैर-मुस्लिम की संपत्ति को लूटने में हिचकिचाते नहीं थे। वे पूरी तरह से मूर्ति के विरोधी थे। जैन और हिंदू मंदिरों को ध्वस्त करना, मूर्तियों को तोडना, देवधन को लूटना, हिंदू और जैन व्यापारीओं की संपत्ति को लूटना उनकी धार्मिक फर्ज का एक भाग था। यह विदेशी शासक हिंदू और जैन धर्मावलंबियों को अपने पवित्र धार्मिक स्थल बनाने की अनुमति नहीं देते थे। उनके संकुचित उलेमोओं के द्वारा दिये गये जड आदेश ही उनके लिये अंतिम शब्द थे। उनका पूरा लक्ष्य भारत को इस्लाम में परावर्तित करने का था। जो मुस्लीम होना स्वीकार नहीं करते थे उन के उपर बडा और भारी कर डाला जाता था और अन्य सैंकडो तरीकों से परेशान किया जाता था।

ऐसी विपरीत परिस्थितियों में भी जैन धर्मावलंबी निराश नही हुए। जैन प्रजा मधुरभाषी, विनयी, अनुवर्तनशील और बुद्धिशाली थी। अतः इन स्वार्थपरस्त और असहिष्णु शासक के द्वारा प्रारब्ध विनाश को कुछ हद तक रोकने में सफल हुई।

दिल्ली की हर एक सल्तनत के समय में जैनधर्मावलंबियों का निरंतर अखंड संबंध रहा था। इस के ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध है। शाहबुद्दीन महम्मद घोरी पर जैनाचार्य श्रीवसंतकीर्ति का प्रभाव था। जैन शास्त्रों में उस समय दिल्ली 'योगिनीपुर' नाम से प्रसिद्ध था। यहां पर बडे श्रीमंत परिवार रहते थे जिसमें अधिकांश ओसवाल वंश के थे।

उसी तरह अल्लाउद्दीन खिलजी (१२९६ से १३१६) जैसा असहिष्णु शासक भी दिगंबर मुनि श्रुतवीरस्वामीजी और श्वेतांबर आचार्य श्रीजिनचंद्रसूरिजी, यति श्रीरामचंद्रजी को समान सम्मान देता था।

अल्लाउद्दीन के पुत्र कुतुबुद्दीन मुबारकशा (१३१६-१३२०) के शासनकाल में खरतरगच्छ के आचार्य श्रीजिनचंद्रसूरिजी (तृतीय) सन् १३१८ में दिल्ली पधारे थे। वे पातशाह कुतुबुद्दीन से जैनतीर्थों की यात्रा करने का फरमान प्राप्त करने में सफल हुए थे। (अर्थात् गैरमुस्लीमों को अपने पवित्र मंदिरो की यात्रा पर सख्त प्रतिबंध था) आचार्यश्री का एक भक्त श्रावक ठक्कुर फेरु पातशाह की टंकशाला (जहां पर चलनी सिक्के बनाये जाते है) का प्रमुख था। (उसने 'वास्तुसार' नामक ग्रंथ की रचना की है।)

तुघलक वंश के शासकों पर जैनियों का ज्यादा प्रभाव था। आ.श्रीजिनचंद्र सू.(तृतीय) के पश्चात् आ.श्रीजिनकुशलसूरि उनके पट्ट पर आसीन हुए। ठक्कर फेरु के प्रभाव से ग्यासुद्दीन तुघलक (१३२० से १३२५) ने आ.श्रीजिनकुशलसूरिजी को गुजरात की तीर्थयात्रा करने का फरमान दिया। गुजरात की तीर्थयात्रा पूर्ण करके आ.श्रीजिनकुशलसूरिजी सिंधुदेश गये, जहां पर मुस्लीम राज्य था। उन्होंने अपनी अंतिम सांस सन् १३३२ में देवराजपुर में ली। उनके पट्ट पर आ.श्रीजिनपद्मसूरि आसीन हुए। ग्यासुद्दीन के शासनकाल में प्राग्वाट वंश के शूरा और वीरा नाम के श्रावक दिल्ली आये। उन्होंने सल्तनत में बडा पद प्राप्त किया। उसी समय में सुलतान ने फरमान जाहिर किया कि श्रीमाली श्रावक अपनी प्रतिमा की रथयात्रा के लिये गजपति ले सकते है।

ग्यासुद्दीन तुघलक का पुत्र महम्मद तुघलक सन् १२२५ से १३५१ तक दिल्ली का सुलतान रहा। महम्मद तुघलक उलेमाओं के प्रभाव में नहीं था अतः उसकी धार्मिक नीति सहिष्णु थी। अतः काष्टा संघ के आचार्य भट्टारक श्रीदुर्लभसेन (दिगंबर), नंदी संघ के श्रीभट्टारक रत्नकीर्ति, श्रीप्रभाचंद्र (दिगबंर) विविधतीर्थकल्प के कर्ता श्वेतांबर आचार्य श्रीजिनप्रभसूरि, आचार्य श्रीजिनदेवसूरि, यति श्रीमहेंद्रसूरि को पर्याप्त सम्मान मिला।

फिरोझ तुघलक (१३५१-१३८८) धर्मांध था। फिर भी दिगंबर भट्टारक श्रीप्रभाचंद्र, श्वेतांबर आचार्य श्रीरत्नशेखरसूरिने उस से सम्मान प्राप्त किया। आयुर्वेद के विशेषज्ञ रेखा पंडित को फिरोझ तुघलक मालवा के सुलतान ग्यासुद्दीन और अफघानसूरि शासकों से बहुमान प्राप्त हुआ।

तुघलक वंश के पतन के बाद दिल्ली में सैयदवंश का शासन स्थापित हुआ। उनका शासन सन् १४१४ से लेकर १४५० तक चला। फिर एकबार अग्रवाल श्रेष्ठी दिल्ली में आये। इस समय में दिगंबर भट्टारकों का विशेष सम्मान हुआ। अपभ्रंश भाषा के विख्यात कवि 'रइधू' ने दिल्ली में विशेष स्थान प्राप्त किया।

सैयद वंश के बाद दिल्ली पर लोदी वंश का राज्य हुआ। लोदी वंश के शासकों का जैनियों के साथ अच्छे संबंध रहे। सिकंदर लोदी के समय में देवराज चौधरी दिल्ली का मुख्य व्यापारी था। सुलतान ने उसके गुरु श्रीविशालकीर्ति (दिगंबर) का सम्मान किया था। दूसरे अग्रवाल साधारण नामक अत्यंत मेधावी थे। उन्होंने बादशाह के पास से अनेक फरमान प्राप्त किये।

गदाशाह नामक का श्रावक लोदी शासन में बडा अधिकारी था। वह बुंदेलखंड से था और विद्रोही था। उसने मूर्तिपूजा का विरोध किया। उसके विचारों का लोगों के उपर बहोत प्रभाव हुआ और परिणाम स्वरूप दिगंबर परंपरा में तरणपंथ का उद्गम हुआ। ऐसे ही प्रयास के फल स्वरूप श्वेतांबरपंथ में लोकां मत का प्रारंभ हुआ। अपने धार्मिक मत के अनुकूल होने के कारण मुस्लिम शासकों ने इस विचारधारा को वेग दिया।

मुहम्मद तुघलक को छोडकर दिल्ली के सभी शासक कट्टर सुन्नी पंथ के थे। धार्मिक दृष्टि से यह बडे ही असहिष्णु थे। उन्होंने कोई हिंदु और जैन मंदिरों को नहीं छोडा, न मूर्तियों को छोडा। फिर भी भारत की अस्मिता का अस्तित्व बना रहा। जैन धर्मावलंबी अपने धर्म की आस्थामें अडिग साबित हुए। विपरीत परिस्थितियों में भी वे सम्मान और अनुकूल राजाज्ञा (फरमान) प्राप्त करने में सफल रहे। शिखरबद्ध मंदिर के विनाश होने पर भी उन्होंने गृहचैत्य बना करके प्रतिमा पूजा का प्रचलन चालु रखा।

गुजरात सल्तनत

गुजरात भारत के पश्चिम समुद्र किनारे पर है। पुरातनकाल से वह जैन धर्म का मुख्य केंद्र बना रहा। ईसा की तेरहवी शती के पूर्वार्ध में गुजरात को वस्तुपाल और तेजपाल जैसे श्रेष्ठी, और संघपति मीले। इस समय में गुजरात का विदेश के साथ व्यापारिक संबंध था। अतः जैन श्रेष्ठि धनिक थे। जामनगर, पोरबंदर, धोलेरा, ओखा, घोघा, भरुच, सुरत, गंधार जैसे बंदरो से विदेश व्यापार होता था। अतः जैन श्रेष्ठिओं ने मंदिरों का ध्वंस हो जाने के बाद भी उनका पुनर्निर्माण किया, नये मंदिर बने, सहस्रशः मूर्तियां बनी। नये साहित्य का सृजन हुआ, शास्त्रों का पुनर्लेखन हुआ। महम्मद गझनी(गजनवी) ने सोमनाथ मंदिर पर आक्रमण किया तब से गुजरात मुस्लीम आक्रांताओं का शिकार बनता रहा फिर भी गुजरात में तेरहवी शताब्दी के अंत तक हिंदु साम्राज्य अखंड रहा।

सन् १२९७ में अल्लाउद्दीन खीलजी ने गुजरात को दिल्ली सल्तनत के अधीन किया तब से गुजरात में दिल्ली सल्तनत द्वारा नियुक्त सुबेदारों का शासन रहा। गुजरात में अंतिम सुबेदार जाफर खां सन् १३९१ में नियुक्त हुआ। वस्तुतः वह स्वतंत्र शासक की तरह ही राज्य करता था फिर भी कानूनी तौर पर उसने सन् १४०१ में दिल्ली सल्तनत का त्याग कर अपने पुत्र ततर खां को नसीरुद्दीन महम्मद शाह नाम देकर गुजरात का स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया। इतिहास यह गवाह देता है कि सन् १४०७ में जाफरखां ने स्वयं अपने पुत्र को जहर देकर मार डाला और स्वयं सुलतान महम्मद शाह नाम धारण कर लिया। अंततः उसके पुत्र अलप खां ने उसको जहर देकर उसी तरह मार दिया। अलप खां ने अहमदशाह नाम रखा और गुजरात का शासक बना। गुजरात के सुलतानो में अहमद शाह, महम्मद बेगडा, बहादुर शाह प्रसिद्ध हुए। इन्होंने सन् १४११ से लेकर सन् १५७२ तक गुजरात पर शासन किया। तत्पश्चात् गुजरात मुघल साम्रज्य का हिस्सा बन गया।

गुजरात के शासको ने भी हिंदू और जैन धर्मावलंबियों पर अत्याचार किये। उनके धार्मिक स्थल तोड दिये गये। फिर भी गुजरात में जैन धर्म का प्रसार अक्षुण्ण रहा। उसकी वजह श्रीमंत और प्रभाववंत जैन श्रेष्ठी थे। जैन श्रेष्ठिओं ने गुजरात के शासक और दिल्ली के सुबेदारों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध बनाये। जैनाचार्यों ने भी इस कार्य में बहोत प्रदान किया।

गुजरात में जैनधर्म के अस्तित्व को सुरक्षित रखने में जिनका महत्तम प्रदान है वैसे कुछ एक श्रेष्ठियों के नाम को जानना प्रस्तुत होगा। इन श्रेष्ठियों के नाम एवं प्रदान के विषय में जैन ग्रंथों में उल्लेख प्राप्त होते है। कुछ एक संदर्भ इस प्रकार है। आ.श्रीजिनप्रभसूरि कृत 'विविधतीर्थकल्प', आ.श्रीकनकसूरिकृत 'नाभिनन्दनोद्धारप्रबन्ध', 'खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली', विद्यातिलकसूरिकृत 'कन्यान्वय महावीर कल्प परिशेष',

प्रतिष्ठासोमकृत 'सोम सौभाग्य काव्य' इन ग्रंथो से मध्यकालीन इतिहास के विषय में उल्लेखनीय संदर्भ उपलब्ध होते है।

जैसे उपकेशी जैन श्रेष्ठि समराशाह (समरसिंह, पिता का नाम देशक) के ग्यासुद्दीन तुघलक और अलप खां के साथ घनिष्ठ संबंध थे। उसकी प्रतिभा के कारण उसे कुतुबुद्दीन मुबारकशाह ने (दक्षिण भारत में) तेलंग का अनुशासक बनाया था।

उसने फरमान प्राप्त करके शत्रुंजय तीर्थ का जीर्णोद्धार किया था। इसी समय में जसलशाह नामक श्रेष्ठि ने सन् १३१० में खंभात में अजितनाथ भगवान के मंदिर का निर्माण किया था। और भी श्रेष्ठियों के नाम उपलब्ध होते है जिन्होंने १५वी शताब्दी में जैन धर्म की सुरक्षा में महत्तम प्रदान किया था। पाटण के नरसिंह, वडनगर के देवराय, इडर के दो भाई विशाल और गोविंद, कर्णावली के वत्सराज, उपकेशी ओसवाल संघवी मांडलिक, पोरवाल संघवी साहशा, चित्रकूट के श्रावक कर्माशाह इत्यादि।

मध्यकाल में जैनधर्म के प्रभाव की सुरक्षा करने में श्वेतांबर संप्रदाय के भिन्न गच्छीय आचार्य भगवंतो का भी विशेष प्रदान रहा। खरतर गच्छ के आ.श्रीजिनचंद्र सू. (तृतीय), आ.श्रीजिनकुशल सू., आ.श्रीजिनसागर सू., आ.श्रीजिनहर्ष सू., आ.श्रीजिनचंद्र सू. (चतुर्थ), तपागच्छीय आ.श्री जयकल्याण सू., आ.श्रीजयचंद्र सू., आ.श्रीरत्नशेखर सू., उपकेश गच्छ के आ.श्रीकनकसूरि., अंचल गच्छ के आ.श्रीमेरुतुंग सू., आ.श्रीजयकीर्तिसूरि, आ.श्रीजयकेसरी सू.।

१५वी शताब्दी के मध्यभाग में तपागच्छीय आ.श्रीसोमसुंदर सूरि और उनके शिष्य आचार्यश्री मुनिसुंदरसूरि और आ.श्रीसुमतिसाधुसूरि ने जैनधर्म के प्रभाव की सुरक्षा के लिये प्रदान किया था।

जैन आचार्य, जैन श्रेष्ठियों की अति श्रद्धा और समर्पण और कार्यशैली के परिणाम से कट्टर मुस्लिमशासकों को भी तीर्थयात्रा, अहिंसा एवं मंदिर बनाने के फरमान जाहिर करने के लिये बाध्य होना पडा। जब मूर्तिभंजक सुलतान मंदिर और मूर्तियों का नाश करने की आज्ञा देते थे उसी समय जैन समाज उनके नाक के नीचे ही मंदिर निर्माण या जिर्णोद्धार में व्यस्त थे। विध्वंसक थक गये किंतु सर्जनकार थके नहीं।

इस समय में मानों की छोटे गृहमंदिर एवं धातु की छोटी मूर्ति और यंत्र के निर्माण कार्य में बाढ सी आयी। उस समय गुजरात में जैनियों की आबादी पालिताना, गिरनार, पालनपुर, तारंगा, अहमदाबाद, देवकुल पाटण इत्यादि शहर में ज्यादा थी। इन शहरों में नये ग्रंथो की रचना और पुराने शास्त्रों का पुनर्लेखन विपुल मात्रा में हुआ।

मालवा सल्तनत

मालवा के मध्ययुग का प्रारंभ परमारों के पतन से प्रारंभ होता है। परमारों का पतन इसा की १४वी शताब्दी के प्रारंभ में हुआ किंतु मालवा पर मुस्लीम आक्रमण का प्रारंभ बहोत पहले से हो चूका था। सन् ७२४ में आरब आक्रांता जुनैद ने मालवा पर हमला किया। इस आक्रमण को गुर्जर-प्रतीहार राजाओ ने परास्त किया। सन् ११९६ में कुतुबुद्दीन ऐबक ने मालवा की उत्तर सीमा तक कूच की थी। वह वहीं से दिल्ली लौट गया।

मालवा के बूरे दिन तब शरु हुए जब सन् १२३५ में दिल्ली का दारु सुलतान शमसुद्दीन इल्तुमीश ने मालवा के उज्जैन और अन्य प्रांतों को लूंटा। सन् १३०५ में अल्लाउद्दीन खीलजी ने पूर्व मालवा के अंतिम राजा महलक दास(ह) को पराजित करके परमार शासन को समाप्त कर दिया। तब से सन् १४०१ तक मालवा दिल्ली की सल्तनत का ताबेदार रहा। तैमूर के आक्रमण के समय में मालवा की स्थिति अस्थिर और खराब थी तब मालवा के सूबेदार दिलावर खां घोरीने अपने आपको स्वतंत्र घोषित किया। सन् १४०५ में दिलावर खां का पुत्र अलप खां-होशंग खां घोरी के नाम से सत्ता में आया। उसने मांडवगढ (हाल-मांडू) को अपनी राजधानी बनाई।

सन् १४३५ में होशंग खां का निधन हो गया। उसका पुत्र महम्मद खां घोरी राजगद्दी पर आया। किंतु उसके मंत्री महम्मद खीलजी(प्रथम) ने उसको पदच्युत किया और मालवा में स्वतंत्र खीलजी शासन का प्रारंभ किया। सन् १४६९ में उसका देहांत हुआ। उसके बाद क्रम से ग्यासुद्दीन-नसीरुद्दीन-महम्मद खीलजी(द्वितीय) मालवा के शासक हुए। किंतु इन शासकों का अधिकतर समय मेवाड के राणा थंभा और गुजरात के सुल्तान बहादुर शाह के साथ युद्ध करने में ही बीता। गुजरात के सुलतान बहादुर शाह ने महम्मद खीलजी(द्वितीय) को हराया और मालवा के राज्य को अपने अधीन किया। मुघल बादशाह हुमायूं ने बहादुर शाह पर आक्रमण कर मालवा से भगाया। दुर्भाग्य से हुमायूं ने बहादुर शाह को पूरी तरह निर्मूल नहीं किया परिणामतः बहादुरशाह ने फिर मालवा जीता और वहां मलूक खां नामक सूबेदार को नियुक्त किया। मलूक खां ने गुजरात पर आक्रमण किया और मालवा को स्वतंत्र घोषित किया। किंतु यह स्वतंत्रता अल्प समय तक ही रही। सन् १५१२ में दिल्ली के सुलतान शेरशाह सूरी ने मालवा पर आक्रमण किया। वहां पर सुजावत खां को सुबेदार बनाया। इस प्रकार मालवा फिर से दिल्ली सल्तनत के अधीन हुआ। शेरशाह के मृत्यु के बाद सुजावत खां ने अपने आपको स्वतंत्र घोषित कर दिया। उसने अपने तीन पुत्रों के लिये मालवा के तीन भाग किये परंतु मलिक बैजिद ने दो भाइओं से राज्य छीन लिआ और बाजबहादूर के नाम से पूरे मालवा का शासक हो गया।

अफघान सुल्तान बाजबहादूर भी बहोत समय राज्यसुख न पा सका। सन् १५६२ में अकबर ने आदम खां और पीर महम्मूद नाम के दो सेनापतियों को मालवा जीतने के लिये भेजा। इन दोनो सेनापतिओं ने बडी बेरहमी से मांडवगढ को अपने हाथ में लिया और मालवा फिर से दिल्ली सल्तनत के अधीन हुआ।

मुघल राज्यकाल में अकबर-जहांगीर-शहाजहां और औरंगजेब का मालवा पर अधिकार रहा। अकबर के राज्य काल में आदम खां, अब्दूल खां, शियासुद्दीन, फकरुद्दीन मीर्झा शाहरुख, शिहब खां, नकीब खां उज्जैन के सुबेदार थे। जहांगीर के समय में उज्जैन का कारोबार मोमीद खां को हाथों में था।

औरंगजेब के समय में जफरखां और जसवंतसिंह मालवा के शासक रहे। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मराठों ने मालवा पर आक्रमण किया। मुगल सत्ता मालवा की सुरक्षा न कर सकी। मुगल सत्ता ने संधि की नीति अपनाई। अंततः सन् १७४१ में मालवा पूर्णतः मराठा शासकों के अधीन हुआ।

सुल्तानों के शासन काल में जैन धर्मावलंबियों ने मालवा में बहोत तरक्की की। राजनैतिक, प्रशासनिक

और नवनिर्माण जैसे सभी क्षेत्रो में जैन अधिकारी और जैनश्रेष्ठिओं की आवाज का वजन रहता था। सामाजिक क्षेत्र में भी उनकी आवाज का अनुभव होता था, उनकी आवाज सुनाई देती थी। इस समय में मालवा में सांस्कृतिक और प्रशासनिक क्षेत्र में दो व्यक्तित्व का सन्मान था। वह थे कवि मंत्री मंडन और कवि संग्राम सिंह। मालवा के इतिहास में इन दोनों को बहोत ही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

इसके अतिरिक्त और भी उल्लेखनीय नाम है जिन्होंने मालवा को प्रभावित किया। जैसे—संघपति होलीचंद्र, झांझण शा, संघपति धनराज, धरणा शा, पूंजराज, नरदेव सोनी, मेघ, शिवराज, वक्कल, जावड शा इत्यादि। दिगंबर भट्टारकों का कभी मालवा को ऐतिहासिक प्रदान रहा है।

वर्तमान स्थिति में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि कट्टर धार्मिक असहिष्णु तुर्क शासकों ने जैन धर्मावलंबीओं को इतनी सुविधाएं क्यों दी? वे नये नये मुस्लीमों के प्रति सून्नीपंथ प्रति या तो शिया पंथी के प्रति उदार नहीं थे तो फिर जैनियों के प्रति उदार क्यों बने? सिर्फ लूंट और मंदिर तोडने को मजहब समझनेवाले बर्बर, क्रूर और कट्टर शासकों के बीच जैन मंदिर, उपाश्रय, ज्ञानभंडार, धर्मशाला आदि कैसे बच गये?

इसके कारण निम्नलिखित हो सकते है।

१) भारत में विदेशी आक्रांताओं का प्रवेश होने के बाद मध्य एशिया और अफघानिस्तान की राजनैतिक एवं सामरिक परिस्थिति में परिवर्तन हो गया। भारत में सुलतानों ने अपने पैर जमा दिये थे और सत्ता और साम्राज्य को सम्हालने हेतु सेनापति और अमीरों की जरूरत थी। भारत में राज्यव्यवस्था और अनुशासन की जरूरत महसूस हो रही थी। मध्य एशिया और अफघानिस्तान की परिस्थिति में परिवर्तन होने से सेनापति, अधिकारी वर्ग, अमीरों का आगमन नहीं हुआ। भारत आये हुए अफघानों ने अपना नया कबीला बना लिया। अपनी अस्तित्व की रक्षा के लिये और महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिये वे भारत की प्रजा के साथ मीलने लगे। शास्ता के लिये सामरिक बल और प्रशासनिक व्यवस्था अनिवार्य होती है। अफघान शासकों को इन दोनों अनिवार्यताओं की पूर्ति के लिये धर्मपरिवर्तित हिंदु, राजपूत और जैनों का सहकार लेने के लिये विवश होना पडा। दूरप्रदेश तक सीमाओं की रक्षा हेतु राजपूतों का सहकार्य लेना पडा और जब लूट का धन खत्म हो गया तो आर्थिक व्यवस्था हेतु जैनियों का सहारा लेना पडा।

२) भारत में आये हुये विदेशी मुस्लिमों को अपने आपको भारत का कायमी निवासी बनाने के लिये भारतीय प्रक्रियासे गुजरना पडा, उनको लगा कि कानून और व्यवस्था बनाये रखने के लिये स्थानिक प्रजातंत्रका विश्वास जितना जरुरी है। मध्यकाल को राजनैतिक परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में संघर्ष, ईर्ष्या का वातावरण चारों और फैला हुआ था। लूंट और बर्बरता हदसे अधिक हो गई थी। ईस्लामी शासकों की युद्धनीति और ऐयाशीके कारण आर्थिक व्यवस्था पूर्ण रूप से बिखर गई थी। युद्ध में खर्च बहोत होता था, ऐयाशीके लिये वे बहोत घन लूंटाते थे। अतः राजकोश में धन की कमी हमेशा महेसूस होती थी। इसलिये उनको धनकी आपूर्ति के लिये धनिक वर्ग के पराधीन होना पडा, उस समय के धनपति अधिकतर जैन थे। इस्लामी शासकों ने उन्हें अपनी और आकर्षित किया उनको जीवन की और संपत्ति की सुरक्षा का विश्वास दिया। अतः मुस्लिमकाल में बहोत जैन परिवार प्रतिष्ठितवर्ग में गिने जाने लगे। जैनीओं के पास व्यापार-सम्बन्ध और व्यवस्था का अच्छा ज्ञान भी था,

और वंश परंपरागत अनुभव भी था। इस क्षमता और बुद्धिमत्ता के बल पर उनको अधिकारी पद और सन्मान मिले। इस पदाधिकार का और शासनसेवा का उपयोग करते हुए जैनधर्मावलंबीओं ने नये मंदिरो का निर्माण किया, पुराने मंदिरों का जीर्णोद्धार किया और संघयात्रा के लिये फरमान प्राप्त किये। इस कार्य में श्रमणसंस्था का भी बहोत बडा प्रदान रहा।

३) तत्कालीन जैन समाज को भी मुस्लीमशासकों की हकीकत प्रतीत हो गई थी, अगर वे सहकार न देते तो उनका सर्वस्व लूंट लिया जाता था। अपने धंधा-रोजगार-परिवार और धर्मस्थानकों को सुरक्षित करने हेतु जैन समाज शासकों की और उनके परिवार की जरुरत पूरी करने के लिये आगे आया। जैनीओं का व्यापार क्षेत्र छोटे गाँव से बडे शहर तक फैला हुआ था, उनका यह आर्थिक साम्राज्य राजनैतिक परिधिओं से परे था। इस लिये शासकवर्ग को भी व्यापारीवर्ग की कुछ शरतों को मान्य होने के लिये बाध्य होना पडा, उनको सुरक्षा देनी पडी।

दिल्ली की केन्द्रवर्ती सल्तनत बहोत ही अस्थिर रही, अतः बहोत सारे प्रादेशिक राज्य अस्तित्व में आये। इसके कारण सामरिक और शुल्क की अपेक्षाओं का अन्त हो गया। अब वें प्रजा को ज्यादा लूंट भी नहीं सकते थे, क्यों कि प्रजा के साथ और सहकार के उपर ही उनका अस्तित्व निर्भर था। इसके लिये एक तर्फ राजपूत जैसे क्षत्रिय समाज को महत्व देना अनिवार्य हो गया। दूसरी और जैन जैसे वैश्य समाज को हाथ पर रखना अनिवार्य हो गया। यही स्थिति अकबर से लेकर शाहजहाँ तक के मुगलशासकों की भी रही। औरंगजेब ने इस नीति का त्याग कर दिया, परिणामतः मुगलशासन का अन्त हो गया।

मुस्लीम शासकों के साथ जैनियों का संबंध देखकर और मुस्लीम काल में उनके धर्मस्थानों की अबाधा को देखकर पश्चाद्वर्ति कुछ एक विद्वानों ने ऐसी धारणा बना ली है कि जैनियों की इस देश को लूंटने वाले आक्रांताओं को साथ समझौता करके इस देश को लूंटने वालों को मदद की है। और वे हिंदू विरोधी थे। किंतु यह धारणा हकिकत पर नजर करने पर बेबूनियाद साबित होती है। जैन श्रेष्ठिवर्ग मुस्लिम शासकों के लिये धन एकत्रित करते थे यह बाह्य दिखावा था। वस्तुतः जैनों को इस कार्य हेतु बाध्य होना पडा था। मुस्लिम शासकों का उनके प्रति औदार्य भी विवशता के कारण ही था। जैन समाज अहिंसा में श्रद्धा रखता था। बलप्रयोग उनके खून में नही था। अतः वे हमेशा अपनी सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सुरक्षा के लिये शासकवर्ग का सहारा लेना था। भौगोलिक दृष्टि से जैनों का अपना स्वतंत्र प्रदेश नही था जहां वे खुद को महफूझ समज सके। यह भी भूलना नहीं चाहिए की जहां पर शासकों के साथ जैनियों के अच्छे संबंध रहे वहां हिंदू समाज के धर्म स्थानों का विनाश कम हुआ। मालवा और अन्य क्षेत्रों में यह हकिकत नजर आती है। इतना ही नहीं जब भी प्रजा पर आपत्ति आयी तब भामाशा, जगडूशा जैसे श्रेष्ठियों ने सभी धर्म के लोगों के लिये अपने अन्नक्षेत्र खुले रखे थे।

मध्यकालीन इतिहास का इतना विहंगावलोकन करने के बाद संग्रामसिंह के इतिहास पर नजर करेंगे। वस्तुतः यह इतिहास संग्रामसिंह की पार्श्वभूमि जानने के लिये उपयुक्त है। संग्रामसिंह ने अपने ग्रंथों में अपना परिचय दिया है और पट्टावलीयों में उनके कार्य प्रभाव का वर्णन उपलब्ध होता है। उसके अनुसार उनका जीवनवृत्त हम जान सकते है। बुद्धिसागर में संग्रामसिंह ने दक्षिण में निझामशाह के साथ युद्ध का उल्लेख किया है। उसकी ऐतिहासिक सामग्री इस प्रकार है।

गुजरात और बीजापुर के बीच वायव्य दक्षिण प्रांत में स्थित भारतीय राज्य अहमदनगर सल्तनत के नाम से प्रसिद्ध है। मध्यकाल के अंतिम चरण में उसका उदय हुआ। जुन्नर के शासक मलिक अहमद ने बहमन सेनापति को हराकर सन् १४९०के २८ मई के दिन अपने आप को स्वतंत्र घोषित किया और अहमदनगर का सुलतान बना। मलिक अहमद निझाम-उल-मुल्क मलिक हसन बहरी का पुत्र था। पिता के मृत्यु के बाद उसने पिता की याद में निझामशाही वंश का प्रारंभ किया। पहले उसकी राजधानी जुन्नर थी किंतु सन् १४३३ में अहमदनगर की नींव रखी। सन् १५१० में मलिक अहमद की मृत्यु हुई[१]। बुद्धिसागर के अनुसार महमद खीलजी दूसरा और निझामशाही के बीच युद्ध विक्रम संवत् १५२० में अर्थात् ईसवीय सन् १४४४ में हुआ था। अतः यह युद्ध निझाम-उल-मुल्क मलिक हसन बहरी (मलिक अहमद के पिता) के साथ होने की संभावना है।

---

१. The **Ahmadnagar Sultanate** was a late medieval Indian kingdom, located in the northwestern Deccan, between the sultanates of Gujarat and Bijapur. Malik Ahmad, the Bahmani governor of Junnar after defeating the Bahmani army led by general Jahangir Khan on 28 May 1490 declared independence and established the **Nizam Shahi dynasty** rule over the sultanate of Ahmednagar. Initially his capital was in the town of Junnar with its fort, later renamed Shivneri. In 1494, the foundation was laid for the new capital Ahmadnagar. In 1636 Aurangzeb, then Mugal viceroy of Deccan finally annexed the sultanate to the Mughal empire

Malik Ahmad was the son of **Nizam-ul-Mulk Malik Hasan Bahri**. After the death of his father, he assumed the appellation of his father and from this the dynasty found by him is known as the Nizam Shahi dynasty. He founded the new capital Ahmadnagar on the bank of the river Sina. After several attempts, he secured the great fortress of Daulatabad in 1499.

After the death of Malik Ahmad in 1510, his son Burhan, a boy of seven was, installed in his place. In the initial days of his reign, the control of the kingdom was in the hands of Mukammal Khan, an Ahmadnagar official and his son. Burhan Shah I died in Ahmadnagar in 1553.

संग्राम सोनी[१]

संग्राम सोनी यह नाम जैन इतिहास में सुप्रसिद्ध है, अमर है। देशभक्ति, राज्यनिष्ठा, लोकसेवा, साधर्मिक भक्ति, श्रुतभक्ति और जिनभक्ति व गुरु उपासना की जब बात निकलती है तो अनेक नामों के बीच एक नाम उभरता है संग्राम सोनी का।

संग्राम सोनी के पूर्वजों में सांगण सोनी का नाम प्राप्त होता है। वे खंभात के रहनेवाले ओशवाल वंश के शिरोमणी श्रावक माने जाते थे। १४ वीं सदी के आरंभ में खंभात जब जैन परंपरा का समृद्ध केन्द्र बन चुका था। तब वहां उस समय के समर्थ जैनाचार्य देवेन्द्रसूरिजी और आचार्य विजयचन्द्रसूरिजी के बीच कुछ सैद्धांतिक बातो को लेकर मतभेद पनपने लगे... बढने लगे तब सांगण सेठ ने इन दोनों श्रमण शाखा में सही और सार्थक शाखा कौन सी है? इस बात को लेकर पशोपश रही। अपने मन की उलझन को सुलझाने के लिए उन्होने अट्ठम तप करके अधिष्ठायक देव का जाप-ध्यान किया। शासनदेव ने आकर बताया कि 'सांगण, आचार्य श्री देवेन्द्रसूरि वर्तमान युग के समर्थ व उत्तम श्रमण महात्मा है। उनका गच्छ -उनकी परंपरा काफी लम्बे अरसे तक चलेगी। इसलिए तुम उनकी उपासना करना।' फिर सांगण और उसका परिवार, उसके स्वजन सभी आचार्य देवेन्द्रसूरिजी की सेवा में समर्पित हो गये। उन्हे रहने के लिए वसति-स्थान दिये, श्रमण आचार के अनुकूल सुविधाएं जुटायी। तभी से आचार्य देवेन्द्रसूरिजी की परंपरा 'तपगच्छ की लघु पोशाल' के रूप में प्रसिद्ध हुई। इसके बारे में गुर्वावली के श्लोक १३८/१३९ से जानकारी प्राप्त होती है।

सोनी सांगण यशस्वी था, संपन्न था और सूझबूझ का धनी था। किन्ही कारणों से वि.सं. १३५४, इस्वी १२९८ में सांगण ने खंभात छोडा और मालवांचल के मांडवगढ में आकर रहे। दिल्ही में उस समय (इस्वीसन १२९८ से १३१६) अलाउद्दीन खिलजी का राज्य था[२]। बाद में मांडवगढ में सोनी परिवार बसते चले और बढते

---

१. जैन परंपरानो इतिहास भागः ३ से संकलित- संकलन एवं संवर्द्धनः भद्रबाहु विजय

२. अलाउद्दीन खिल्जी दिल्ली सल्तनत के खिलजी वंश का दूसरा शासक था । उसने अपना साम्राज्य दक्षिण में मदुरै तक फैला दिया था। अलाउद्दीन ख़िलजी के बचपन का नाम अली 'गुरशास्प' था। जलालुद्दीन ख़िलजी के तख्त पर बैठने के बाद उसे 'अमीर-ए-तुजुक' का पद मिला। मलिक छज्जू के विद्रोह को दबाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने के कारण जलालुद्दीन ने उसे कड़ा-मनिकपुर की सूबेदारी सौंप दी। भिलसा, चंदेरी एवं देवगिरि के सफल अभियानों से प्राप्त अपार धन ने उसकी स्थिति और मज़बूत कर दी। इस प्रकार उत्कर्ष पर पहुँचे अलाउद्दीन ख़िलजी ने अपने चाचा जलालुद्दीन की हत्या 22 अक्टूबर 1296 को कर दी और दिल्ली में स्थित बलबन के लाल महल में अपना राज्याभिषेक सम्पन्न करवाया।

मालवा पर शासन करने वाला महलकदेव एवं उसका सेनापति हरनन्द (कोका प्रधान) बहादुर योद्धा थे। 1305 ई. में अलाउद्दीन ने मुल्तान के सूबेदार आईन-उल-मुल्क के नेतृत्व में एक सेना को मालवा पर अधिकार करने के लिए भेजा। दोनों पक्षों के संघर्ष में महलकदेव एवं उसका सेनापति हरनन्द मारा गया। नवम्बर, 1305 में किले पर अधिकार के साथ ही उज्जैन, धारानगरी, चंदेरी आदि को जीत कर मालवा समेत दिल्ली सल्तनत में मिला लिया गया। जलोदर रोग से ग्रसित अलाउद्दीन ख़िलजी ने अपना अन्तिम समय अत्यन्त कठिनाईयों में व्यतीत किया और 5 जनवरी 1316 ई. को वह मृत्यु को प्राप्त हो गया।

खिलजीकालीन भारत (गूगल पुस्तक ; लेखक - सैयद अब्बास रिजबवी)

चले। समृद्ध होने के साथ साथ उन्होने राज्यसत्ता में भी अपना सिक्का जमाया। राजाओं के साथ वे उनके मजबूत रिश्तों ने समाज-धर्म और संस्कृति को कुछ हद तक सुरक्षा प्रदान की और प्रगति भी दी। बाद में तो अनेक सोनी परिवार गुजरात के अलग अलग गांवों से आकर मांडवगढ में बसने लगे। उसका पुत्र पद्मराज हुआ, उसका पुत्र सूर हुआ, उसका पुत्र धर्मसेन हुआ और उसके बाद वरसिंह हुआ।[१]

वरसिंह के नरदेव और धन(देव) नाम के दो पुत्र हुए[२]। धनसिंह ने चंद्रपुरी[३] में बहुत धन देकर लाखों लोगों को शकों के संकट से बचाया था[४]। नरदेव (नारिया) ज्येष्ठ पुत्र था, उसकी सोनाई नामकी पत्नी थी। मांडव में बादशाह हुसंगसेन[५] के दरबार में उसका बडा रुतबा था, मान-सन्मान था। वह दानी और उदार था। उसका यश चौतरफ फैल रहा था। उसने मांडव में एक सत्रागार सा बनाया था वहां पर सभी आगतुंकों को तरह तरह की वस्तुएं प्रदान की जाती थी[६]। उसके बारे में एक उल्लेख यह भी मिलता है किः

खंभात के रहनेवाले सोनी नारिया (नरेदव) के पुत्र पद्मसिंह की पत्नी आल्हगदेवी ने वि.सं. १४३८ में भादरवा सुद ७ के दिन तपागच्छ के आचार्य देवेन्द्रसूरिजी उनके पट्टधर आचार्य सोमसुंदरसूरिजी, आचार्य मुनिसुंदरसूरिजी आचार्य जयचन्द्रसूरिजी, आचार्य भुवनसुंदरसूरिजी के उपदेश से जीरावला पार्श्वनाथ भगवान के जिनप्रासाद की चौकी का शिखर करवाया था।

उसका एक पुत्र था संग्रामसिंह[७]। जो संग्राम सोनी के नाम से इतिहास में जाना गया। वह कुछ समय के लिए व्यापार हेतु या अन्य कारणों से गुजरात के तत्कालीन वढियार इलाके के लोलाडा (वर्तमान में सुप्रसिद्ध तीर्थ शंखेश्वर के समीप का गांव) में जाकर रहने के पश्चात् वह मांडवगढ में आकर बसा। उस वक्त मालवा[८] में

---

१. ढिल्यामल्लावदीने नरपतितिलके रक्षति क्ष्मामधीशे,सोनीश्रीसाङ्गणाख्यः समभवदुदितश्रीलसत्कीर्तिपूरः।
तत्पुत्रः पद्मराजः प्रथितगुणगणस्तत्सुतः सूरसञ्ज्ञस्तत्सुनुर्धर्मनामा तदनु च वरसिङ्घोऽभवत् सत्यशीलः॥४०४॥ (बुद्धिसागर)

२. नरदेवधनाख्यौ च तत्पुत्रौ द्वौ बभूवतुः। ओसवालकुलोत्तंसौ दीनानाथकृपाकरौ॥४०५॥(बुद्धिसागर)

३. वर्तमान में चांडक, जो आबू की तलहटी में विमलमंत्री ने बसाई थी। जिसमें ३६० मंदिर थे।

४. चन्द्रपुर्यां धनाख्येन वितीर्य विपुलं धनम्। मोचिताः शकसङ्कष्टान्नराः शतसहस्रशः॥४०६॥ (बुद्धिसागर)

५. सन् १४०५ में दिलावर खां का पुत्र अलप खां-होशंग खां घोरी के नाम से सत्ता में आया। उसने मांडवगढ (हाल-मांडू) को अपनी राजधानी बनाई। सन् १४३५ में होशंग खां का निधन हो गया।

६. तज्ज्येष्ठो नरदेव एव समभूत् ख्यातः क्षितौ मण्डपे, सत्रागारकरः सदोद्यतकरः सत्पात्रदः सर्वदः।
हूसङ्गक्षितिपालसंसदि सतां मान्यः परार्थैककृद्भाण्डागारधुरन्धरः स च परस्त्रीसोदरः सुन्दरः॥४०७॥ (बुद्धिसागर)

७. जयत्ययं सम्प्रति तत्तनूजः सङ्ग्रामसिंहः सततं दयालुः। परोपकारैककरः सुशीलः सौजन्यसिन्धुर्जिनभक्तियुक्तः॥४०८॥ (बुद्धिसागर)

८. चौदहवी और पंद्रहवी शताब्दी में मुगल राज्यकाल दौरान मालवा भौगोलिक एवं सामरिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण देश था। नर्मदा और तापी नदी के बीच दक्षिण साम्राज्य का उत्तरपश्चिम भाग मालवा की सीमा में था। गुजरात से उत्तरभारत जानेवाला रास्ता और दक्षिणभारत से उत्तरभारत जानेवाला रस्ता मालवा से ही गुजरता था। इसी कारण किसी भी साम्राज्य के लिए मालवा को जितना महत्त्वपूर्ण था। मालवा का राजा उत्तरभारत के साम्राज्य के लिये एवं पूर्व पश्चिम और दक्षिणभारत के लिये भी महत्त्व रखता था। मालवा जब तक सशक्त था तब तक गुजरात, मेवाड और दिल्ली के लोदी राजाओं के साम्राज्य विस्तार की भावना में अंतराय था आंतरिक झगडों के कारण इ.स. १३०५ में मालवाने अल्लाउद्दीन खीलजी को हस्तक्षेप करने की प्रार्थना की तब से लेकर १४०१ तक वह दिल्ली के आधीन रहा।

मालवा के बहुतांश शासक हिंदुओं के विरोधी रहे। हिंदुधर्म के प्रति असहिष्णु रहे। महम्मद-खान-खीलजी (१४३६-१४६९, सं १४९२-१५२५) मालवा का सबसे शक्तिशाली शासक रहा। उसने बहोत सारे मंदिरों का नाश किया। वह अपने पडोसी राज्यों के साथ लडता रहा। उसका सबसे अधिक समय मेवाड के राणा कुंभा के साथ लडाइ करने में बीता।

Ref.1) History discussion.net, Rising of independent states during 14th 15th century

Ref.2) Maharashtra state gazetteers' general series 1.5 Yr. 1972,
Director-Government print stationary and publicaction. Pg.54,56,494

महमूद खिलजी का शासन था (October 22, 1500- May 25, 1531)। संग्राम सोनी ने बादशाह के अत्यंत विश्वासु व्यक्तियों में अपनी जगह बना ली थी। इसके पीछे एक मजेदार कहानी इस तरह की है।

गुजरात के वढियार प्रान्त के लोलाडा गाँव से निकलकर संग्रामसिंह सोनी अपनी माता देवा, पत्नी तेजा और पुत्री हांसी के साथ मांडवगढ गया। वहाँ पहुँचने पर वो नगर में प्रवेश कर ही रहा था कि उसने एक अचंभित करनेवाला दृश्य देखाः एक सर्प फैले हुए फन पर दुर्गा पक्षी आकर बैठी हुयी थी और किलकारी मार रही थी, प्रसन्नता जता रही थी। संग्राम इस शकुन को देखकर जरा ठिठक सा गया। तभी समीप में खडे एक जानकार व्यक्तिने कहाः 'सेठ, आराम से, निश्चिंत होकर शहर में प्रवेश करे। यह शकुन बडी किस्मतवालों को मिलता है। ऐसे शकुन से शहर में प्रवेश पाने वाला आदमी धन के ढेरों पर रहता है।' और संग्राम सोनी ने अपने पुरखों की भूमि पर कदम रखा। फिर तो पीछे मुडकर देखने की फुरसत ही कहां रही! धीरे धीरे उसने व्यापार वगैरह में अपनी जगह बना ली। एक दिन बादशाह गियासुद्दीन गरमी के दिनों में बगीचे में गया और एक घटादार आम के पेड के तले विश्राम करने लगा। तब उसे माली ने बताया की यह आम तो बांझ है। इस पर फल नही लगते। बादशाह ने आननफानन माली को हुकम कर दिया कि 'इस पेड को काट देना। बांझ आम की आवश्यकता क्या है?' संग्रामसिंह तब वही उपस्थित था। उसने हाथ जोडकर बादशाह से गुजारिश कीः

'बादशाह सलामत! यह आम का पेड तो पैदाईशी बांझ है। आप इसे मुझे बख्शीश कर दे। इसे बख्श दे। इस पेड के जीव को अभयदान देने की रहम करे। हजूर की मेहरबानी होगी और अल्लाताला की मंजूरी होगी तो यह पेड बच जाएगा। इतना ही नहीं अगले मौसम तक इस पर फल भी आ जाएंगे।'

बादशाह ने तुनककर कहाः 'अगर अगले मौसम में इस आम पर फल नहीं आये तो में जो हाल इस पेड का करने जा रहा था, वह हाल में तेरा कर दूंगा।' सोनी ने सिर झुकाकर सजदा करते हुए बादशाह सलामत की बात मान ली।

संग्रामसिंह दयालु था, धर्म की परंपरा में पूरी आस्था रखता था। धर्म के प्रभाव से वह परिचित था। उसने आम के पेड तले भगवान की मूर्ति रखकर स्नात्रपूजा पढायी। चंदन-धूप-फल वगैरह अर्पण कर वृक्ष की पूजा की। इसके प्रभाव से उस आम के वृश्र का अधिष्ठायक देव जाग्रत हुआ और संग्राम पर खुशी जाहिर करते हुए बोलाः 'इस आम का जीव पूर्व जन्म में भी बांझ था और इस जन्मे में भी है पर तूने इसे अभयदान दिया है। बादशाह से इसकी जान बख्शायी है इसलिये मैं तेरे पर प्रसन्न हूं। इस पेड की जड के इर्दगिर्द काफी धन गडा पडा है। वह सब तू ले ले, वह तेरे नसीब का है। अब यह पेड बांझ नही रहेगा।'

संग्राम ने पेड के नीचे से सावधानी से धन निकाला और ले गया। कुदरत की करिश्माई कारीगरी कारगर हुई और मौसम के आते ही पूरा पेड आम के फल से लद गया। डालियाँ झुक गयी। संग्राम तो खुशी से नाच उठा। उसने आम के पके हुए फलो को उतारा और रजत थाल में सजाकर उपर रुमाल ढंक कर सुहागन महिला के सिर पर रखते हुए गाजे बाजे के साथ बादशाह के पास ले गया। बादशाह को नजराने के रूप में आम पेश किये और बताया कि ये उसी बांझ आम के फल है। बादशाह अत्यंत प्रसन्न हो उठा। उसने संग्राम को पाँच सुंदर

किमती वस्त्र इनाम देते हुए अपने महल का कामदार नियुक्त किया। बादशाह ने उसे नकद-उल-मुल्क की पदवी भी दी। उपरांत 'जगतविश्राम' बिरुद भी दिया।

श्री और सरस्वती के साथ उस पर सत्ता की कृपा भी पूरी उतरी। वह स्वयं तपगच्छ की वृद्ध पोशाल के आचार्य रत्नसिंहसूरि के पट्टघर पूर्व में भट्टारक आचार्य उदयवल्लभसूरि का श्रावक था।

इस्वी १४६२ में वि.सं. १५१८ के जेठ सुद १५ के दिन उसने भगवान अजितनाथ की परिकरवाली जिन प्रतिमा निर्मित की और उसे तपगच्छ की बडी पोशाल के आचार्य रत्नसिंहसूरिजी के पट्टधर आचार्य श्री उदयवल्लभसूरि के हाथों प्रतिष्ठा करवायी। इस प्रतिमा के नीचे के हिस्से में वस्त्रपट्ट है उसके नीचे सो. संग्राम नाम उत्कीर्ण है। मूलनायक भगवान की दोनों और भगवान अजितनाथ की मूर्तियां है। उज्जैन स्थित देश खडकी मोहल्ले में भगवान चन्द्रप्रभ स्वामी का श्वेतांबर जैन मंदिर है। उसमें भगवान अजितनाथ की श्वेत पाषाण की जो प्रतिमा बिराजमान है, उस की गादी के पिछले हिस्से में उपर्युक्त मतलब की लिखावट है।

सोनी संग्रामसिंह उन दिनों के प्रौढ प्रतिभाशाली एवं महाप्रभावक आचार्य सोमसुंदरसूरिजी के प्रति प्रगाढ आस्था रखते हुए उनकी आज्ञा पालन को अपने जीवन का श्रेष्ठ कर्तव्य समझते थे। उन्होंने मांडव में इस्वी १४७२ में भगवान सुपार्श्वनाथ का जिनप्रासाद बनवाया था। (आज भी 'मांडवगढनो राजियो नामे देव सुपास' यह पंक्ति सुप्रसिद्ध है।)

मक्षीजी तीर्थ में संग्रामसोनी ने पार्श्वनाथ भगवान को समर्पित जिनप्रासाद बनवाया। वि.सं. १५१८ के जेठ सुद १५, गुरुवार का दिन मक्षीजी तीर्थ की सालगिरह के दिन के रूप में प्रसिद्ध है। इसके अलावा वाई, मंदसौर ब्रह्ममंडल, सामलिया (सेमालीया) धार, नगर, खेडी, चंडाउली वगेरे १६ स्थानों में १७ बडे बडे जिन मंदिर बनवाये और अनेक धर्मकार्य किये।

संग्रामसिंह को श्रुत के प्रति भी अगाध भक्ति थी। उसने वि.सं. १४७०(इस्वी १४१४) में तपगच्छ गगन में सूर्य समान आचार्य सोमसुंदरसूरिजी को मांडवगढ में चातुर्मास करवाया। उस चातुर्मास में उसने उनके श्रीमुख से भगवतीसूत्र का सटीक श्रवण किया। भगवतीसूत्र में जगह जगह 'गोयमा' यह शब्द कुल मिलाकर ३६ हजार बार आता है, जब जब 'गोयमा' शब्द आया तब उस वक्त संग्राम सोनी ने एक सोनामुहर, उसकी माता ने आधी सोनामुहर, उसकी पत्नी के एक चौथाई (पावभर) सुवर्णमुद्रा रखकर उस परम पावन शब्द के प्रति अपना बहुमान व्यक्त किया। ३६+१८+९ कुल ६३ हजार सोनामुहरें आचार्य भगवंत के चरणों में रखते हुए उन्हे स्वीकार करने की विनती की। आचार्यश्री ने 'साधु पैसों का परिग्रह नही रखते' कहकर इस राशि का उपयोग शास्त्र-आगमग्रंथ लिखवाने में करने की प्रेरणा दी। सोनी संग्रामसिंह ने उस तमाम राशि का उपयोग करते हुए सोने-रुपे की स्याही से सचित्र कल्पसूत्र और कालिकाचार्य कथा की कई प्रतियां करवायी। आचार्य भगवंत के साथ के तमाम मुनिओं को एक-एक प्रति अर्पण की। और अन्य संघों के ज्ञान भंडार में भी अलग अलग जगह पर प्रतियां सुरक्षित रखी।

मांडवगढ में वैसे भी अनेक सोनी परिवार बसे हुए थे। वि.सं. १५४३ मे वहां सोनी मांडण, सोनी नागराज,

सोनी वर्धमान, सोनी पासदत्त और सोनी जिनदास, सोनी गडरमल, सोनी गोपाल इत्यादि जैन परिवारों के बारे में उल्लेख प्राप्त होता है।

सोनी संग्रामसिंह धनी एवं दानी था साथ ही ज्ञानी था, कवि था और युद्ध भूमि पर अजेय वीर था।

मालवा के बादशाह मेहमूद ने दक्षिण के बादशाह निजाम शाह को जीतने के लिए वि.सं. १५२० में चैत्र सुद ६ के दिन शुक्रवार को, मांडवगढ से प्रयाण किया तब सोनी संग्राम भी उसके साथ गया था और बादशाह जब विजय प्राप्त करके वापस लौट रहा था तब गोदावरी के किनारे प्रतिष्ठानपुर (पैठण)[१] मे आया तब कवि संग्राम सोनी ने वहां के जिनप्रसाद में जिनेश्वर के दर्शन करके 'बुद्धिसागर' नामक संस्कृत भाषा के काव्य ग्रंथ की रचना की[२]। जिसके ४ तरंग (विभाग) एवं कुल ४११ श्लोक की रचना की थी।

कुल मिलाकर संग्राम सोनी बारहव्रत धारी श्रावक था। सच्चरित्रवान पुरुष था। वह कवि कल्पतरु था। कवित्व के बारे में उसे पूर्ण ज्ञान था।

अनेक ग्रंथो में अनेक आचार्य भगवंतो ने, रचनाकारों ने संग्राम सोनी के बारे में बहुत कुछ लिखा है। आज भी उनकी जिनभक्ति व श्रुतभक्ति कीर्तिकथाएं गायी जाती है। गिरनार महातीर्थ पर तो संग्रामसोनी की टोंक के उपर सहस्रफणा पार्श्वनाथ भगवान का जिनालय आज भी उनकी कीर्ति को दोहरा रहा है। मालवी भाषा के लहजे में कहा जाए तोः

अणी रे जेरो कोई कोनी
जैसो वियो संग्राम सोनी

---

१. पैठण महाराष्ट्र के इतिहास में विगत् २५०० वर्षों से अपना स्वतंत्र स्थान रखता है प्राचीन काल से यह गांव 'दक्षिण काशी' नाम से पहेचाना जाता है। पूर्व काल में इसका नाम प्रतिष्ठानपुर था। यह सातवाहन राजाओं की राजधानी थी उस काल से लेकर अब तक पैठण के पंडितों का धर्मनिर्णय आखरी माना जाता है। आचार्य श्री भद्रबाहुस्वामीजी तथा वराहमिहिर पैठण से थे। आचार्य श्री हीरविजयसूरिजी मुनि अवस्था में यहां शास्त्र अभ्यास हेतु आये थे। (Ref. - Google Wikipedia)

२. नखेषुभू१५२०सम्मितविक्रमाब्दे पञ्चेभरामेन्दु१३८५मिते च शाके। चैत्रस्य षष्ठ्यां सितपक्षजायां शुक्रस्य वारे शशिभे गविन्दौ॥४११॥ (बुद्धिसागर)
चापोदये वीर्ययुतैश्च खेटैः श्रीमालवे महमूदभूपे। जेतुं महीपालनिजामसाहिं युद्धेन याते दिशि दक्षिणस्याम्॥४१२॥ (बुद्धिसागर)
लसत्प्रतिस्थानपुरेऽतिरम्ये गोदावरीतीरतरङ्गपूते। जिनं प्रणम्येह सुबुद्धिसिन्धुं सङ्ग्रामसिंहः कुरुते कवीन्द्रः॥४१३॥ (बुद्धिसागर)
श्रीमद्दक्षिणभूपतिं जितवतः कुम्भेभपञ्चाननस्योद्यद्दुर्जरगर्वपर्वतमहत्पक्षच्छिदो ग्रासने।
खल्वीश्रीमहमूदसाहिनृपतेर्विश्वासमुद्राधरः, सङ्ग्रामः स्वकलत्रमित्रविलसत्पुत्रैश्चिरं जीवतु॥४१४॥ (बुद्धिसागर)

जैन साहित्य में नीतिशास्त्र पर हुई ग्रंथरचना

नीतिवाक्यामृतम्

जैन साहित्य में नीतिशास्त्र पर अनेक ग्रंथों की रचना हुई है। इस में सर्वप्रथम आचार्य श्रीसोमदेवसूरि का कार्य महत्त्वपूर्ण है। जिस प्रकार चाणक्य ने चन्द्रगुप्त के लिए अर्थशास्त्र की रचना की उसी प्रकार आचार्य श्रीसोमदेवसूरिजी ने राजा महेन्द्र के लिए नीतिवाक्यामृतम् इस ग्रंथ की रचना की। जो गद्यात्मक सूत्रबद्ध शैली में ३२ समुद्देशों मे विभक्त है। १. धर्मसमुद्देश, २. अर्थसमुद्देश, ३. कामसमुद्देश, ४. अरिषड्वर्ग, ५. विद्यावृद्ध, ६. आन्वीक्षिकी, ७. त्रयी, ८. वार्ता, ९. दण्डनीति, १०. मंत्री, ११. पुरोहित, १२. सेनापति, १३. दूत, १४. आचार, १५. विचार, १६. व्यसन, १७. स्वामी, १८. अमात्य, १९. जनपद, २०. दुर्ग, २१. कोष, २२. बल, २३. मित्र, २४. राजरक्षा, २५. दिवसानुष्ठान, २६. सदाचार, २७. व्यवहार, २८. विवाद, २९. षाड्गुण्य, ३०. युद्ध, ३१. विवाह और ३२. प्रकीर्ण।

उपर्युक्त विषयसूचि के अनुसार यह ग्रंथ राजा-राज्यशासन-व्यवस्था आदि विषयों में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। अल्पाक्षरी और मनोरम होने के कारण कौटिल्य अर्थशास्त्र से भी ज्यादा सरस लगता है। इस ग्रंथ पर हरिबल नामक विद्वान ने टीका लिखी है।

आचार्य श्रीसोमदेवसूरि के यशोधरचरित नाम के ग्रंथ में भी यशोधर राजा का चरित्र चित्रण करते समय राजनीति की विस्तृत चर्चा की है।

लघु-अर्हन्नीति

प्राकृत साहित्य में बृहदर्हन्नीतिशास्त्र के आधार पर आचार्य श्री हेमचंद्रसूरिजी ने लघु-अर्हन्नीति यह संस्कृत पद्यात्मक छोटा ग्रंथ लिखा। महाराज कुमारपाल के लिए यह ग्रंथ निर्माण हुआ। धर्म के अनुसार राजनीति का उपदेश इस ग्रंथ में किया गया है।

कामन्दकीय-नीतिसार

उपाध्याय श्री भानुचंद्रजी इनके शिष्य उपाध्याय श्री सिद्धिचन्द्रजी ने कामन्दकीय-नीतिसार नाम के ग्रंथ का संकलन किया है। कौटिल्य अर्थशास्त्र के सूत्रों की स्पष्ट व्याख्या करनेवाला यह ग्रंथ है। काल के अनुसार यह ग्रंथ कौटिल्य अर्थशास्त्र के बाद मतलब ६ वे शतक में से है। इसकी रचना श्लोकबद्ध होकर कौटिल्य अर्थशास्त्रमें से पारिभाषिक संकल्पना समझने के लिए इसका उपयोग होता है।

जिनसंहिता

मुनि श्री जिनसेन जी ने जिनसंहिता की रचना की। इस ग्रंथ में ६ अधिकार है। १.ऋणादान, २.दायभाग, ३.सीमानिर्णय, ४.क्षेत्रविषय, ५.निस्स्वामित्ववस्तुविषय, ६.साहस, स्तेय, भोजनादिकानुचित व्यवहार और सुतकाशौच।

राजनीति

देवीदास नामक विद्वान ने राजनीति नामक प्राकृत ग्रंथ का निर्माण किया है।

बुद्धिसागर

कवि संग्रामसिंह सोनी ने बुद्धिसागर नामक संस्कृत ग्रंथ का निर्माण किया है।

ग्रंथ के प्रतिपाद्य विषय

नाम के अनुसार ही यह ग्रंथ बुद्धि का अर्थात् ज्ञान का सागर है। ग्रंथ की रचना चार तरंगों में हुई है। धर्मतरंग, नयतरंग, व्यवहारतरंग और प्रकीर्णकतरंग। तरंगों की रचना भी क्रम से की है। धर्म के कारण नीति में प्रवृत्ति होती हैं, नीति से व्यवहार और व्यवहार से प्रकीर्णार्थ प्राप्त होता है। तरंगों की श्लोक संख्या— धर्मतरंग- ८९, नयतरंग- १०७, व्यवहारतरंग- ७०, प्रकीर्णकतरंग- १५०

धर्मतरंग में सामान्य नीति के विषय में उपदेश है। धर्म, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, परस्त्रीपरिहार, गृही, ब्रह्मचारी, यती, गुरु, उपासक, शिष्य, माता-पिता के विषयमें उचित कर्तव्यों का निर्देश यहां प्रस्तुत है।

नयतरंग- में राजनीति के विषय में उपदेश है। नीति, शासनविषयक बुद्धिमत्ता, राजा, राणी, कुमार, मन्त्री, अधिकारी, प्रजासेवक, अश्व और हाथी आदि के लक्षण यहां प्रस्तुत है।।

व्यवहारतरंग में व्यवहार करते समय पालन करने योग्य बातों का उपदेश है।

प्रकीर्णकतरंग में वास्तु, शरीर, वैद्यकसार, ज्योतिषसार, शकुनसार, सामुद्रिकसार, स्त्रीस्वरूप, रत्नपरीक्षा आदि विविध अर्थ-काम साधक विषयों का लक्षण प्रस्तुत है। अंत में मोक्षसाधक वैराग्य, चार योग आदि आध्यात्मिक विषय यहां प्रस्तुत किये है।

संक्षेपमें बुद्धिसागर में बारह विषयों का वर्णन है। सामान्य नीति,राजनीति, वास्तु, शरीर, वैद्यक, ज्योतिष, शकुन, सामुद्रिक, स्त्रीस्वरूप, रत्नपरीक्षा, वैराग्य, चार योग।

ग्रंथकार ने यह ग्रंथ अनेक शास्त्रों का अध्ययन करके निर्माण किया है। सूत्रबद्ध शैली के ग्रंथों का सार निकालकर समझने के लिए सरल ऐसे ग्रंथ का निर्माण किया है।

- शैलेश शिंदे

अनुक्रमः

अनु.	विषयाः	श्लोकसंख्या	तरंगः	पृष्ठक्रम
१.	मङ्गलाचरणम्	१-४	१	१
२.	ग्रन्थप्रस्तावना	५-१९	१	१
३.	धर्मप्रशंसा	२०-२६	१	४
४.	सत्यम्	२७-३३	१	५
५.	परद्रव्यपरिहारः	३४-३७	१	६
६.	परस्त्रीपरिहरणम्	३८-४२	१	७
७.	परिग्रहः	४३-४५	१	८
८.	गृही	४६-४९	१	९
९.	ब्रह्मचारी	५०-५१	१	९
१०.	यती	५२-५७	१	१०
११.	इन्द्रियम्	५८-६०	१	११
१२.	गुरुः	६१-६२	१	११
१३.	उपासकः	६३-६६	१	१२
१४.	शिष्यः	६७-७४	१	१२
१५.	मातापितरौ	७५-८७	१	१४
१६.	मङ्गलाचरणम्	१-९	२	१७
१७.	राजा	१०-४०	२	१८
१८.	राज्ञी	४१-४३	२	२४
१९.	कुमारः	४४-४८	२	२५
२०.	मन्त्री	४९-६३	२	२६
२१.	अधिकारी	६४-७०	२	२८

२२.	प्रजासेवकः	७१-८३	२	३०
२३.	सर्वोपदेशः	८४-९०	२	३२
२४.	राजवाहनाश्वलक्षणम्	९१-९६	२	३४
२५.	गजलक्षणम्	९७-१०७	२	३५
२६.	व्यवहारः	१-५६	३	३८
२७.	वासः	५७-६९	३	४८
२८.	वास्तुलक्षणम्	७०-७१	३	५१
२९.	शरीरम्	१-१४	४	५३
३०.	वैद्यकसारः	१५-३९	४	५५
३१.	ज्योतिःसारः	४०-६२	४	६०
३२.	शकुनसारः	६३-६९	४	६६
३३.	सामुद्रिकसारः	७०-७८	४	६८
३४.	स्त्री	७९-८३	४	६९
३५.	रत्नपरीक्षा	८४-८८	४	७०
३६.	मुक्तापरीक्षा	८९-९९	४	७१
३७.	पद्मरागादिमणिपरीक्षा	१००-१०१	४	७४
३८.	नागमणिपरीक्षा	१०२-१०३	४	७४
३९.	वैराग्यम्	१०४-१२९	४	७५
४०.	चतुर्विधयोगः	१३०-१३८	४	७९
४१.	ग्रन्थकारप्रशस्तिः	१३९-१५०	४	८१
	परिशिष्ट-१ बुद्धिसागरश्लोकानाम् अकारादिक्रमः			८५
	परिशिष्ट-२ सन्दर्भग्रन्थसूचिः।			९३

मन्त्रिश्रीसङ्ग्रामसिंहविरचितः

॥बुद्धिसागरः॥

(सानुवादः)

[प्रथमो धर्मतरङ्गः]

[मूल] **नमः श्रीवीतरागाय मोहध्वान्तैकभानवे।**
नमज्जनघनानन्दकारिणे विश्वधारिणे॥१॥(१.१)

(अन्वयः) मोहध्वान्तैकभानवे नमज्जनघनानन्दकारिणे विश्वधारिणे श्रीवीतरागाय नमः।

(अर्थः) मोहान्धकार के समूह के लिए सूर्य की तरह, नम्रजन के समूह को आनन्द देने वाले (आनन्दित करने वाले), विश्व को धारण करने वाले ऐसे श्रीवीतराग देव को (मेरा) नमस्कार।

[मूल] **सर्वकल्याणरूपाय सम्पत्सिद्धिप्रदायिने।**
विघ्नव्रजविनाशाय गौतमस्वामिने नमः॥२॥(१.२)

(अन्वयः) सर्वकल्याणरूपाय सम्पत्सिद्धिप्रदायिने विघ्नव्रजविनाशाय गौतमस्वामिने नमः।

(अर्थः) सर्व(प्रकारके)कल्याणरूप, संपत्ति और सिद्धि को प्रदान करने वाले, विघ्न के समुदाय का विनाश करने वाले ऐसे गौतमस्वामी को नमस्कार।

[मूल] **येषां प्रसादतः प्राप्ता बुद्धिर्विश्वोपकारिणी।**
प्रारिप्सितार्थसिद्ध्यर्थं गुरुभ्यः सर्वदा नमः॥३॥(१.३)

(अन्वयः) येषां प्रसादतः विश्वोपकारिणी बुद्धिः प्राप्ता, (तेभ्यः) गुरुभ्यः प्रारिप्सितार्थसिद्ध्यर्थं सर्वदा नमः।

(अर्थः) जिनके प्रसादसे विश्व के लिए उपकारक ऐसी बुद्धि प्राप्त हुई है, (ऐसे) गुरु को प्रारम्भ किये हुए इच्छित विषय की सिद्धि के लिए सदा नमस्कार।

[मूल] **श्रीरत्नसिंहसूरेः पट्टालङ्करणमद्भुतगुणाढ्यम्।**
गुरुमुदयवल्लभाख्यं सूरिं वन्दामहे सततम्॥४॥(१.४) (आर्या)

(अन्वयः) श्रीरत्नसिंहसूरेः पट्टालङ्करणम् अद्भुतगुणाढ्यम् उदयवल्लभाख्यं सूरिं गुरुं सततं वन्दामहे।

(अर्थः) श्रीरत्नसिंहसूरि के पट्ट को अलंकृत करने वाले अद्भुत गुणोसे युक्त, श्रीउदयवल्लभसूरि नामक गुरु को हम सदैव वंदन करते है।

[मूल] **उद्यत्प्रतापदिनकरकिरणैर्निर्धूतवैरितिमिरौघः।**
खल्वीकुलाब्धिचन्द्रः स जयति महमूदभूमीन्द्रः॥५॥(१.५)

(अन्वयः) उद्यत्प्रतापदिनकरकिरणैः निर्धूतवैरितिमिरौघः खल्वीकुलाब्धिचन्द्रः स महमूदभूमीन्द्रः जयति।

(अर्थः) प्रखर सूर्य के किरणों कें द्वारा जिसने वैरी रूपी अंधकार के समूह को धोया है, ऐसा खल्वीकुल रूपी सागर के लिए चंद्र की तरह, भूमि का इंद्र ऐसे उस महमूद की जय हो।

[मूल] तस्य च मालवदेशे मण्डपदुर्गेऽत्र भाति सुविनीतः।
सङ्ग्रामसिंहनामा भाण्डागाराधिकारीन्द्रः॥६॥(१.६)

(अन्वयः) तस्य च अत्र मालवदेशे मण्डपदुर्गे सुविनीतः भाण्डागाराधिकारीन्द्रः सङ्ग्रामसिंहनामा भाति।

(अर्थः) और उसके यहां मालवदेश के मांडवगढ में भाण्डागार के अधिकारी में इंद्र समान, अतिशय विनय से युक्त ऐसा संग्रामसिंहनाम वाला (भंडारी) शोभित होता है।

[मूल] गौतमस्वामिनः प्राप्तवरो भक्त्यातिसादरः।
बुद्ध्या अभयकुमारोऽयं वाग्वादिन्याः प्रसादतः॥७॥(१.७)

[मूल] ओसवाले कुले श्रीमान्नरदेवस्य नन्दनः।
निर्मलार्थगभीराणि शास्त्राण्यालोच्य तत्त्वतः॥८॥(१.८)

[मूल] सारमुद्धृत्य तेभ्यस्तु निजबुद्ध्यातिशुद्धया।
बुद्धिसागरनामेति सर्वदर्शनसम्मतम्॥९॥(१.९)

[मूल] सङ्ग्रामो रचयत्येतच्छास्त्रं विश्वोपकारकम्।
गभीरमनतिक्रम्यमधीरैर्मन्दबुद्धिभिः॥१०॥(१.१०)

[मूल] सुवृत्तरत्ननिचयैः पूर्णं लक्ष्मीनिकेतनम्।
उद्यद्विवेकपूर्णेन्दुकलाशतसुशोभितम्॥११॥(१.११)

[मूल] सद्धर्मनयशुद्धार्थव्यवहारप्रकीर्णकैः।
तरङ्गनामभिर्युक्तं चतुर्भिर्धीवरप्रियम्॥१२॥(१.१२) (षड्भिः कुलकम्)

(अन्वयः) गौतमस्वामिनः प्राप्तवरः, भक्त्यातिसादरः, वाग्वादिन्याः प्रसादतः बुद्ध्या अभयकुमारः ओसवाले कुले श्रीमान्नरदेवस्य नन्दनः अयं सङ्ग्रामः निर्मलार्थगभीराणि शास्त्राणि तत्त्वतः आलोच्य, तेभ्यस्तु अतिशुद्धया निजबुद्ध्या सारम् उद्धृत्य अधीरैः मन्दबुद्धिभिः अनतिक्रम्यम्, गभीरम्, विश्वोपकारकम्, सुवृत्तरत्ननिचयैः पूर्णम्, लक्ष्मीनिकेतनम्, उद्यद्विवेकपूर्णेन्दुकलाशतसुशोभितम्, सद्धर्मनयशुद्धार्थव्यवहारप्रकीर्णकैः चतुर्भिः तरङ्गनामभिः युक्तम्, धीवरप्रियम्, सर्वदर्शनसम्मतं बुद्धिसागरनाम इति एतत् शास्त्रं रचयति।

(अर्थः) गौतमस्वामी से जिसने वर प्राप्त किया है ऐसा, भक्ति से अतिशय सादर, देवी सरस्वती के प्रसाद से बुद्धि से अभयकुमार जैसा, यह संग्राम ओसवालकुल में श्रीमान् नरदेव का पुत्र, निर्मल अर्थवाले गभीर ऐसे शास्त्रों को तत्त्वतः जानकर उन शास्त्रों से अतिशुद्ध ऐसी अपनी बुद्धि से सार निकालकर, अधीर ऐसे मन्दबुद्धिवालों के लिए अबोध्य, गभीर ऐसा विश्व के उपकार का कारण, अच्छी वृत्तरूपी रत्नों के समुदाय से पूर्ण, लक्ष्मी का निवास है जिसमें ऐसा, उपर आये हुए विवेकपूर्ण चंद्र

की सौ कलाओं से सुशोभित, सद्धर्म, नय, शुद्धार्थव्यवहार और प्रकीर्णक इन चारो तरंगो के नामो से युक्त, विद्वानों को प्रिय, सर्वदर्शनमान्य ऐसे बुद्धिसागर नाम के शास्त्र की रचना करता है।

[मूल] भूयात् सदर्थसम्पत्तिव्यवहारविवेकवित्।
विश्वं मदुपकृत्यैव युगपत् श्रीसमन्वितम्॥१३॥(१.१३)

[मूल] चिन्तयन्निति सङ्ग्रामो जगज्जनहिते रतः।
शास्त्रकर्तृच्छलेनैव विश्वोपकरणव्रतम्॥१४॥(१.१४)

[मूल] स्वयमङ्गीकृतं पूर्णं प्रका(क)रोत्यघननाशनम्।
स्थापकः सर्वधर्माणां जिनधर्मधुरन्धरः॥१५॥(१.१५) (त्रिभिर्विशेषकम्)

(अन्वयः) मदुपकृत्यैव च युगपत् श्रीसमन्वितं विश्वं भूयात्, इति चिन्तयन् जगज्जनहिते रतः सदर्थसम्पत्तिव्यवहारविवेकवित्, जिनधर्मधुरन्धरः सर्वधर्माणां स्थापकः सङ्ग्रामः शास्त्रकर्तृच्छलेनैव स्वयमङ्गीकृतं अघनाशनं विश्वोपकरणव्रतं पूर्णं प्रकरोति।

(अर्थः) और मेरे उपकार के साथ ही लक्ष्मी से युक्त ऐसा विश्व होवे, ऐसा विचार करता हुआ जगत के लोगों के हित में रत ऐसा, सम्यक् अर्थ, सम्पत्ति, व्यवहार, विवेक को जाननेवाला, ऐसा जिनधर्मधुरंधर, सर्वधर्मों की स्थापना करने वाला संग्राम शास्त्रकर्ताओं के छल से हि विश्व के ऊपर उपकार करने का स्वयं ही धारण किया हुआ पापों का नाशक व्रत पूरा करता है।

[मूल] नातिविस्तारमत्यन्तहितार्थशतसङ्कुलम्।
प्रसन्नार्थमतः शास्त्रं मान्यमेतन्मनीषिभिः॥१६॥(१.१६)

(अन्वयः) नातिविस्तारम्, अत्यन्तहितार्थशतसङ्कुलम्, प्रसन्नार्थम्, अतः एतत् शास्त्रं मनीषिभिः मान्यम्।

(अर्थः) जो अति विस्तीर्ण नहि है, अत्यन्त हित के कारण ऐसे सैंकडो अर्थ का समूह जिसमें है, और जिसमें प्रसन्न अर्थ है, इसिलिए यह शास्त्र विद्वानों के द्वारा मान्य हो।

[मूल] ये चोपहासनिरताः सदा दोषैकदृष्टयः।
कृतोऽयमञ्जलिस्तेभ्यः क्षमध्वं चापलं मम॥१७॥(१.१७)

(अन्वयः) ये सदा दोषैकदृष्टयः उपहासनिरताश्च तेभ्यः अयं अञ्जलिः कृतः, मम चापलं क्षमध्वम्।

(अर्थः) जो सदा दोष हि देखते है और उपहास में रत है, उनको यह अंजलि है। मेरी चंचलता को माफ करें।

[मूल] धर्मान्नयप्रवृत्तिः स्यान्नयात् सद्व्यवहारधीः।
व्यवहारात्प्रसीदन्ति प्रकीर्णार्थाः सुनिश्चिताः॥१८॥(१.१८)

(अन्वयः) धर्मात् नयप्रवृत्तिः, नयात् सद्व्यवहारधीः, व्यवहारात् सुनिश्चिताः प्रकीर्णार्थाः प्रसीदन्ति।

(अर्थः) धर्म से नय (नैतिकता) में प्रवृत्ति होती है, नय(नैतिकता) से सद्व्यवहार वाली बुद्धि प्राप्त होती है, सद्व्यवहार से सुनिश्चित ऐसे प्रकीर्णार्थ फलीभूत होते है।

[मूल] अतोऽत्र धर्ममूलत्वान्नयादित्रितयस्य तु।
धर्मबुद्धितरङ्गोऽयमाद्यः प्रारभ्यतेऽधुना॥१९॥(१.१९)

(अन्वयः) अतः अत्र धर्ममूलत्वात् तु नयादित्रितयस्य अयम् आद्यः धर्मबुद्धितरङ्गः अधुना प्रारभ्यते।

(अर्थः) इसिलिए यहां धर्म, नयादि तीनोंका मूल होने के कारण, यह पहिला धर्मबुद्धितरङ्ग अब प्रारम्भ किया जाता है।

अथ धर्मप्रशंसा

[मूल] धर्माद्राज्यं यशो लक्ष्मीः पुत्राः कायस्त्वनामयः।
तपस्यभिरतिश्चापि केवलज्ञानमुत्तमम्॥२०॥(१.२०)

(अन्वयः) धर्माद् राज्यम्, यशः, लक्ष्मीः, पुत्राः कायः तु अनामयः तपस्यभिरतिः अपि च उत्तमं केवलज्ञानम्।

(अर्थः) धर्म से राज्य, यश, लक्ष्मी, पुत्र, शरीर, आरोग्य, तप में अभिरुचि और उत्तम ऐसा केवलज्ञान प्राप्त होता है।

[मूल] तपो ज्ञानं तथा दानं तीर्थं स्वाध्याय एव च।
शमो जीवदया चेति धर्ममूलानि संविदुः॥२१॥(१.२१)

(अन्वयः) तपः, ज्ञानम्, तथा दानम्, तीर्थम्, स्वाध्याय एव च शमः जीवदया च इति धर्ममूलानि संविदुः।

(अर्थः) तप, ज्ञान, वैसे हि दान, तीर्थ, स्वाध्याय, शम और जीवदया यह धर्म के मूल मानते है।

[मूल] तपोदानादिसिद्धिस्तु बह्वायासव्ययैर्भवेत्।
अयत्नसाध्यातिफला दया तेषु प्रशस्यते॥२२॥(१.२२)

(अन्वयः) तपोदानादिसिद्धिः तु बहु आयासव्ययैः भवेत्, तेषु अयत्नसाध्यातिफला दया प्रशस्यते।

(अर्थः) तप,दान, आदि कि सिद्धि बहुत प्रयत्न करने से होती है। उनमें बिना कष्ट से साध्य होने वाली और अधिक फल से युक्त ऐसी दया प्रशंसनीय है।

[मूल] परमात्मा हि सर्वज्ञो यः साक्षी जीवकर्मणाम्।
जीवानां पालनात्त्राणात्परितुष्टो भवेत् स हि॥२३॥(१.२३)

(अन्वयः) यः हि जीवकर्मणां साक्षी, सर्वज्ञः, स परमात्मा हि जीवानां पालनात् त्राणात् परितुष्टः भवेत्।

(अर्थः) जो जीवों के कर्मों का साक्षी, सब कुछ जाननेवाला (है) ऐसा वह परमात्मा जीवों के पालनसे, रक्षणसे संतुष्ट होता है।

[मूल] यो द्वेष्टि मनुजो मोहात्कृमिकीटपशूनपि।
स्वात्मद्वेषः कृतस्तेन ध्रुवं निरयपातनात्॥२४॥(१.२४)

(अन्वयः) यः मनुजः मोहात् कृमिकीटपशून् अपि द्वेष्टि, तेन ध्रुवं निरयपातनात् स्वात्मद्वेषः कृतः।

(अर्थः) जो मनुष्य मोह से कृमि, कीटक, पशुओं का भी द्वेष करता है, उसके द्वारा निश्चित नरक में गिरने के कारण खुद के आत्मा का हि द्वेष किया गया।

[मूल] दयाधर्मं परित्यज्य योऽन्यधर्मान्निषेवते।
वृथा श्रमं स कुरुते कृषिं पर्वतभूमिषु॥२५॥(१.२५)

(अन्वयः) यः दयाधर्मं परित्यज्य अन्यधर्मान् निषेवते, स वृथा श्रमं कुरुते, पर्वतभूमिषु कृषिम्(इव)।

(अर्थः) जो दया धर्म का परित्याग करके अन्य धर्मों का सेवन करता है। वह व्यर्थ श्रम करता है। जैसे पर्वत भूमि में खेती करना (व्यर्थ है वैसे)।

[मूल] आत्मवत्प्राणिनः सर्वान् पश्यन् कृच्छ्राद्विमोचयेत्।
स्वशक्त्या मनुजः सोऽग्रगण्यः पुण्यवतां भवेत्॥२६॥(१.२६)

(अन्वयः) (यः) सर्वान् प्राणिनः आत्मवत् पश्यन् कृच्छ्रात् विमोचयेत्, स्वशक्त्या सः मनुजः पुण्यवतां अग्रगण्यः भवेत्।

(अर्थः) (जो) सर्व प्राणियों को खुद की तरह देखता हुवा पीडा से छुडवाता है वह मनुष्य खुद की शक्ति से पुण्यवान् लोगों में अग्रेसर होता है।

अथ सत्यम्।

[मूल] तपो दानं यशः शौचं विद्या च श्रुतशालिनी।
आचारः शाश्वतो धर्मः सदा सत्ये व्यवस्थिताः॥२७॥(१.२७)

(अन्वयः) तपः, दानम्, यशः, शौचम्, श्रुतशालिनी विद्या, आचारः, शाश्वतः धर्मः सदा सत्ये व्यवस्थिताः।

(अर्थः) तप, दान, यश, पवित्रता, श्रुतपुरस्कृत विद्या, आचार और शाश्वतः धर्म सदा सत्य में स्थित हुवे है।

[मूल] महाभूतानि चन्द्रार्कौ धीह्रि(ह्री)श्रीकान्तिकीर्तयः।
सत्यस्य वशगाश्चैते तस्मात् सत्यं सदा वदेत्॥२८॥(१.२८)

(अन्वयः) चन्दार्कौ, धीह्रि(ह्री)श्रीकान्तिकीर्तयः, महाभूतानि च एते सत्यस्य वशगाः तस्मात् सदा सत्यं वदेत्।

(अर्थः) चंद्र, सूर्य, बुद्धि, लज्जा, लक्ष्मी, कान्ति, कीर्ति, और महाभूत ये(सब) सत्यके वश में है इसिलिए सदा सत्य बोलें।

[मूल] धर्मार्थव्यवहारेषु भये हास्यकथास्वपि।
रते कान्ताजनैर्वापि न वदेदनृतं क्वचित्॥२९॥(१.२९)

(अन्वयः) धर्मार्थव्यवहारेषु भये हास्यकथासु अपि वा कान्ताजनैः रते अपि न क्वचित् अनृतं वदेत्।

(अर्थः) धर्म में, अर्थ में, व्यवहार में, भय में, हास्य में, कथा में, या पत्नी के साथ रत होते हुवे कभी भी असत्य नहि बोलना चाहिए।

[मूल] एतत् सत्यव्रतं नाम सङ्ग्रामः सत्यसङ्गरः।
दिशत्यखिललोकस्य हितायामृतसम्मितम्॥३०॥(१.३०)

(अन्वयः) एतत् अखिललोकस्य हिताय सत्यसङ्गरः सङ्ग्रामः नाम अमृतसम्मितं सत्यव्रतं दिशति।

(अर्थः) सबलोक कें हित के लिए सत्यनिष्ठ, संग्राम अमृत के समान सत्यव्रत का यह उपदेश देता है।

[मूल] सत्या सुसंस्कृता वाणी वक्तृश्रोत्रोश्च मध्यगा।
पुनाति परितः सर्वं गङ्गेवोभयकूलभाक्॥३१॥(१.३१)

(अन्वयः) वक्तृश्रोत्रोः मध्यगा सत्या सुसंस्कृता च वाणी सर्वं परितः पुनाति, उभयकूलभाक् गंगा इव।

(अर्थः) सत्य, सुसंस्कृत वक्ता और श्रोता इनके बिच में बहनेवाली ऐसी वाणी सब ओर से पावन करती है, जैसे गंगा दो किनारे को पावन करती है।

[मूल] नास्ति सत्यात्परा भूषा नास्ति सत्यात्परं यशः।
नास्ति सत्यात्परं चित्तं तस्मात्सत्यं न सन्त्यजेत्॥३२॥ (१.३२)

(अन्वयः) सत्यात् परा भूषा नास्ति, सत्यात्परं यशः नास्ति, सत्यात्परं चित्तं नास्ति, तस्मात् सत्यं न सन्त्यजेत्।

(अर्थः) सत्य से श्रेष्ठ अलंकार नहि है। सत्य से श्रेष्ठ यश(कीर्ति) नहि है। सत्य से श्रेष्ठ चित्त नहि है। इसिलिए सत्य का त्याग नहि करना चाहिए।

[मूल] कन्याप्रदाने शपथे साक्षिवादे सभासु च।
असत्यं प्रवदन्मोहाज्जीवन्निरयमश्नुते॥३३॥(१.३३)

(अन्वयः) कन्याप्रदाने, शपथे, साक्षिवादे, सभासु च मोहात् असत्यं प्रवदन् जीवन् निरयं अश्नुते।

(अर्थः) कन्यादान में, शपथ लेते समय, साक्षि देते समय और सभा में मोह से असत्य को बोलता हुआ जीव जीतेजी नरक को प्राप्त होता है।

अथ परद्रव्यपरिहारः।

[मूल] अज्ञानादथवा लोभात् परिहासाच्छलादपि।
परद्रव्यापहरणं न कार्यमतिगर्हितम्॥३४॥(१.३४)

(अन्वयः) अज्ञानात्, लोभात्, परिहासात्, अथवा छलात् अपि अतिगर्हितम्, परद्रव्यापहरणम्, न कार्यम्।

(अर्थः) अज्ञान से, लोभ से, मजाक से, अथवा छल से भी अतिशय निन्दनीय ऐसा दूसरों के द्रव्य का अपहरण न करें।

[मूल] मार्गे यत्पतितं दृष्टं तथैवान्येन विस्मृतम्।
निक्षेपस्थापितं वापि चौरैरपहृतं च यत्॥३५॥(१.३५)

[मूल] सुवर्णं रौप्यमन्नं वा धातुभाण्डं तथा धनम्।
परकीयं तृणाद्यन्यत् करेणाऽपि न संस्पृशेत्॥३६॥(१.३६)

(अन्वयः) यत् मार्गे पतितं दृष्टम्, तथा वा अन्येन विस्मृतम्, निक्षेपस्थापितम् वा यत् च चौरैः अपहृतम्, परकीयम्, सुवर्णम्, रौप्यम्, अन्नम् धातुभाण्डम् वा, तथा धनम् तृणादि अन्यत् करेण अपि न संस्पृशेत्।

(अर्थः) जो मार्ग में पडा हुआ देखा गया तथा दुसरों के द्वारा भुला हुआ, अमानत से रखा हुआ और जो चोरों के द्वारा अपरहरण किया हुआ परकीय सोना, चांदी, अन्न, या धातु का बर्तन वैसे हि धन, घास आदि अन्य(भी वस्तु) को हाथसे भी स्पर्श नहि करना चाहिए।

[मूल] करनाशा(शं) पदच्छेदं ताडनं शीर्षकर्तनम्।
प्राप्नुवन्त्यशुभं चौरास्तस्माच्चौर्यं परित्यजेत्॥३७॥(१.३७)

(अन्वयः) करनाशं, पदच्छेदम्, ताडनम्, शीर्षकर्तनम् अशुभं चौराः प्राप्नुवन्ति, तस्मात् चौर्यं परित्यजेत्।

(अर्थः) हाथों का नाश, पैरों में छेद, मारना, सिर काटना आदि अशुभता को चोर प्राप्त होते है। इसिलिए चोरी के कार्य का त्याग करें।

अथ परस्त्रीपरिहरणम्।

[मूल] अधर्ममूलं वैरस्य निदानं कलहास्पदम्।
अयशोभाजनं धर्मतरोस्तीक्ष्णकुठारकम्॥३८॥(१.३८)

[मूल] इह निन्दाकरं प्रेत्य महारौरवदायकम्।
मनसापि न कुर्वीत परस्त्रीगमनं बुधः॥३९॥(१.३९) (युग्मम्)

(अन्वयः) बुधः मनसा अपि अधर्ममूलम्, वैरस्य निदानम्, कलहास्पदम्, अयशोभाजनम्, धर्मतरोस्तीक्ष्णकुठारकम्, इह निन्दाकरम्, प्रेत्य महारौरवदायकम्, परस्त्रीगमनं न कुर्वीत।

(अर्थः) बुद्धिवाननें मनसे भी अधर्म का मूल, वैर का कारण, कलह का स्थान, अयश का आधार, धर्मरूपी वृक्ष के लिए तीक्ष्ण कुल्हाडी समान, मरणोत्तर महान ऐसे रौरव नरक को देनेवाला, इहलोक में निन्दाकर ऐसा परस्त्रीगमन नहि करना चाहिए।

[मूल] साभिलाषं परस्त्रीणामालोके सम्भवति(न्ति) हि।
यावन्तो निमिषाः कल्पांस्तावन्तो नरके वसेत्॥४०॥(१.४०)

(अन्वयः) परस्त्रीणां साभिलाषं आलोके हि यावन्तः निमिषाः सम्भवन्ति तावन्तः कल्पान् नरके वसेत्।

(अर्थः) दूसरों के स्त्री को देखने में जितना का समय जाता है उतने कल्प नरक में रहना पडता है।

[मूल] महान्तोऽपि विनश्यन्ति परस्त्रीसङ्गलोलुपाः।
महदैश्वर्ययुक्ता हि विनष्टा रावणादयः॥४१॥(१.४१)

(अन्वयः) परस्त्रीसङ्गलोलुपाः महान्तः अपि विनश्यन्ति, महदैश्वर्ययुक्ता रावणादयः हि विनष्टाः।

(अर्थः) परस्त्री के संग में आसक्त हुवे ऐसे महान(बडे)पुरुषों का भी विनाश होता है। जैसे महान ऐश्वर्य(शक्ति, सम्पत्ति) से युक्त रावण आदि भी नष्ट हुवे।

[मूल] स पण्डितः स गुणवान् सतां पूज्यः स एव हि।
अहो जगज्जितं तेन यः परस्त्रीपराङ्मुखः॥४२॥(१.४२)

(अन्वयः) यः परस्त्रीपराङ्मुखः स पण्डितः, स गुणवान्, स एव हि सतां पूज्यः, अहो तेन जगज्जितम्।

(अर्थः) जो परस्त्री से विमुख है, वह पंडित है, वह गुणवान है, वह ही सज्जनों में पूज्य है। अहो (क्या बताए) उसके द्वारा जग जिता गया।

अथ परिग्रहः।

[मूल] गृहव्यापारनिरतैः परलोकहितेप्सुभिः।
जीवद्रोहो भवेद्येन न स कार्यः परिग्रहः॥४३॥(१.४३)

(अन्वयः) गृहव्यापारनिरतैः परलोकहितेप्सुभिः स परिग्रहः न कार्यः येन जीवद्रोहः भवेत्।

(अर्थः) घर के व्यापार(कार्य)में रत,(और)परलोक के हित की इच्छा वाला वह परिग्रह(धनसङ्ग्रह) न करे जिससे जीव का द्रोह हो।

[मूल] चित्तं नैकान्ततामेति यस्माद् भूरिपरिग्रहैः।
चतुर्वर्गफलं नृणां चले चित्ते न सिद्ध्यति॥४४॥(१.४४)

(अन्वयः) यस्माद् भूरिपरिग्रहैः चित्तम् एकान्ततां न एति, चले चित्ते नृणां चतुर्वर्गफलं न सिद्ध्यति।

(अर्थः) जिस बहुत परिग्रह के द्वारा चित्त एकान्त(स्थिरता) में नहि आता है, चंचल चित्त में मनुष्य को चतुर्वर्ग का फल सिद्ध नहि होता है।

[मूल] बहुलाभेऽपि तृष्णायाः समाप्तिर्नैव दृश्यते।
अतस्तां सम्परित्यज्य भवेत्सन्तोषवान् सुखी॥४५॥(१.४५)

(अन्वयः) बहुलाभे अपि तृष्णायाः समाप्तिः न एव दृश्यते, अतः तां सम्परित्यज्य सन्तोषवान् सुखी भवेत्।

(अर्थः) बहुत लाभ से भी इच्छा की समाप्ति(तृप्ति) नहि दिखती है (होती है) इसिलिए उसका अच्छी तरह से त्याग करके सन्तोषी और सुखी हो।

अथ गृही।

[मूल] **देवतातिथिभक्तश्च दीनानाथानुकम्पकः।**
स्वदारनिरतश्चापि गृही स्याच्च दयापरः॥४६॥(१.४६)

(अन्वयः) देवतातिथिभक्तश्च, दीनानाथानुकम्पकः, स्वदारनिरतः, अपि च दयापरः च गृही स्यात्।

(अर्थः) देवता, अतिथि, भक्त, दीन और अनाथ पर अनुग्रह करने वाला, खुद की पत्नी में संतुष्ट रहने वाला और दया से युक्त ऐसा गृहस्थ होता है।

[मूल] **गुरुदेवार्चनं दानं पठनं संयमस्तपः।**
षट् कर्माणि प्रकुर्वाणो गृही मुच्येत बन्धनात्॥४७॥(१.४७)

(अन्वयः) गुरुदेवार्चनम्, दानम्, पठनम्, संयमः, तपः षट् कर्माणि प्रकुर्वाणः गृही बन्धनात् मुच्यते।

(अर्थः) गुरु और देव की पूजा, दान, पठन, संयम, तप (यह) छ कर्म करते हुवे गृहस्थ बन्धन(संसार बन्धन) से छुटता है।

[मूल] **शुचिधौताम्बरधरो गन्धमाल्यफलाक्षतैः।**
दीपनीराञ्जनैर्धूपनैवेद्यैर्देवमर्चयेत्॥४८॥(१.४८)

(अन्वयः) शुचिधौताम्बधरः, गन्धमाल्यफलाक्षतैः, दीपनीराञ्जनैर्धूपनैवेद्यैः देवम् अर्चयेत्।

(अर्थः) पवित्र, श्वेत वस्त्र को धारण करने वाला (वह) सुगन्धित द्रव्य, माला, फल, अक्षत, दीप, नीरञ्जनि, धूप, नैवेद्य आदि के द्वारा देव को पूजें।

[मूल] **नास्तिक्यलोभादियुतो निन्दकश्चानुसूयकः।**
दम्भाद्धर्माभिमानी च गृही पाप्मै(पै?)कभाजनम्॥४९॥(१.४९)

(अन्वयः) नास्तिक्यलोभादियुतः, निन्दकः, अनुसूयकः च दम्भात् धर्माभिमानी च गृही पाप्मैकभाजनम्।

(अर्थः) नास्तिक और लोभ से युक्त, निंदक और अपमानित करने वाला, दम्भसे धर्म का अभिमान धारण करने वाला गृहस्थ पाप का एकमात्र स्थान है।

अथ ब्रह्मचारी।

[मूल] **गुरुशुश्रूषको नित्यमाज्ञापालनतत्परः।**
भवेत्पठनशीलश्च ब्रह्मचारी स सत्यवाक्॥५०॥(१.५०)

(अन्वयः) गुरुशुश्रूषकः, नित्यमाज्ञापालनतत्परः, पठनशीलः, सत्यवाक् च स ब्रह्मचारी भवेत्।

(अर्थः) गुरुओं का सेवक, नित्य आज्ञा का पालन करने में तत्पर रहने वाला, अध्ययन ही जिसका स्वभाव है ऐसा, सत्य बोलने वाला वह ब्रह्मचारी होता है।

[मूल] **शरीरसंस्कारपरो नृत्यगीतादिसादरः।**
स्रगादिलोलुपश्चापि ब्रह्मचारी विनश्यति॥५१॥(१.५१)

(अन्वयः) शरीरसंस्कारपरः, नृत्यगीतादिसादरः, स्रगादिलोलुपः, च ब्रह्मचारी अपि विनश्यति।

(अर्थः) शरीरों के संस्कार से युक्त, नृत्य और गीत में आस्था रखनेवाला, माला आदि शृङ्गार में मग्न रहने वाला (ऐसा) ब्रह्मचारी विनाश को प्राप्त होता है।

अथ यती।

[मूल] **विनिर्जितेन्द्रियग्रामः सर्वजीवदयापरः।**
सर्वशास्त्रार्थदर्शी च भिक्षुर्मोक्षपदं व्रजेत्॥५२॥(१.५२)

(अन्वयः) विनिर्जितेन्द्रियग्रामः, सर्वजीवदयापरः, सर्वशास्त्रार्थदर्शी, भिक्षुः च मोक्षपदं व्रजेत्।

(अर्थः) विशेष रूप से इंद्रियों के समूह को जितनेवाला, सभी जीवों पर दया करने वाला, सभी शास्त्रों के अर्थ को जाननेवाला ऐसा भिक्षु(संन्यासी) मोक्षपद को प्राप्त होता है।

[मूल] **सर्वसङ्गविनिर्मुक्तो यती धनपरायणः।**
बकवृत्तिः स विज्ञेयश्चण्डपाखण्डदण्डभृत्॥५३॥(१.५३)

(अन्वयः) सर्वसङ्गविनिर्मुक्तः, धनपरायणः, चण्डपाखण्डदण्डभृत्, स यती बकवृत्तिः विज्ञेयः।

(अर्थः) सभी संगति से मुक्त, धन में सदैव परायण (मग्न) रहने वाला, क्रोधी, पाखंड से(दम्भ से) दंड को धारण करने वाला वह मुनि बदक की वृत्ति के समान है, ऐसा जाने।

[मूल] **आहारशुद्धिरहितो विरुद्धाचरणस्तु यः।**
मुक्तिं वाञ्छति मूढात्मा यतिधर्मं विडम्बयेत्॥५४॥(१.५४)

(अन्वयः) आहारशुद्धिरहितः, विरुद्धाचरणः तु यः मुक्तिं वाञ्छति, (स) मूढात्मा यतिधर्मं विडम्बयेत्।

(अर्थः) आहार की शुद्धि से रहित, धर्म के विरुद्ध आचरण करने वाला जो मुक्ति की इच्छा करता है, वह मूर्ख आत्मा(व्यक्ति) साधु के धर्म का उपहास करता है।

[मूल] **अथ साधारणान् धर्मान्नरदेवस्य नन्दनः।**
सङ्ग्रामो वदति श्रेष्ठान् स्वयमाचरितान् शुभान्॥५५॥(१.५५)

(अन्वयः) अथ नरदेवस्य नन्दनः सङ्ग्रामः स्वयं आचरितान्, शुभान्, श्रेष्ठान्, साधारणान्, धर्मान् वदति।

(अर्थः) अब नरदेव का पुत्र संग्राम खुद ने आचरण किया है ऐसे, शुभ, श्रेष्ठ, साधारण धर्मों को कहता है।

[मूल] **दुर्लभं मानुषं प्राप्य नयति व्यसनैस्तु यः।**
पर्वतोपलबुद्ध्यासौ चिन्तारत्नं परित्यजेत्॥५६॥(१.५६)

(अन्वयः) दुर्लभं मानुषं प्राप्य तु यः व्यसनैः नयति पर्वतोपलबुद्ध्यासौ चिन्तारत्नं परित्यजेत्।

(अर्थः) दुर्लभ ऐसे मनुष्य जन्म को प्राप्त करके जो व्यसनों के द्वारा उसको यापित करता है, वह पर्वत के पत्थर की बुद्धि से मानो चिन्तामणिरत्न को ही त्याग देता है।

[मूल] सम्पत्कुलबलैश्वर्यसुरूपत्वश्रुतादिषु।
प्रकुर्वन् गर्वमचिराल्लघुतां याति मानवः॥५७॥(१.५७)

(अन्वयः) मानवः सम्पत्कुलबलैश्वर्यसुरूपत्वश्रुतादिषु गर्वं प्रकुर्वन् लघुतां याति।

(अर्थः) सम्पत्ति, उच्चकुल, बल, प्रभुत्व, अच्छे रूप और श्रुतादि ज्ञानों में गर्व करता हुआ मनुष्य शीघ्रता से अधमता को प्राप्त होता है।

अथेन्द्रियाणि।

[मूल] जेतव्यानीन्द्रियाण्यादौ नरेण नियतात्मना।
उपेक्षितानि तान्याशु विघ्नन्ति व्याधिवत् सदा॥५८॥(१.५८)

(अन्वयः) नियतात्मना नरेण आदौ इन्द्रियाणि जेतव्यानि, तानि उपेक्षितानि आशु व्याधिवत् सदा विघ्नन्ति।

(अर्थः) संयमित आत्मा के द्वारा पहले इन्द्रियों को जितनी चाहिए। यदि उन इन्द्रियों की उपेक्षा की तो वे व्याधि की तरह सदा विनाश करती है।

[मूल] मृगो मीनः करी भृङ्गः पतङ्गः पञ्च जातयः।
शब्दादिलौल्यभावेन पञ्चत्वं यान्त्यशङ्किताः॥५९॥(१.५९)

(अन्वयः) मृगो मीनः करी भृङ्गः पतङ्गः पञ्चजातयः शब्दादिलौल्यभावेन अशङ्किताः पञ्चत्वं यान्ति।

(अर्थः) हरिण, मछली, हाथी, भ्रमर और पतङ्ग यह पांच जातिवाले शब्दादि के लोभ से निःशंक (ही) मृत्यु को प्राप्त होते है।

[मूल] एकैकमप्यनर्थाय महते महतामपि।
पञ्चापि यस्य बलवन्त्यसौ न क्षणमाश्वसेत्॥६०॥(१.६०)

(अन्वयः) एकैकम् अपि महतां महते अनर्थाय। यस्य तु असौ पञ्चापि बलवन्ति स न क्षणम् आश्वसेत्।

(अर्थः) एक एक भी बडे से बडे नाश के लिए कारण है, तो जिसके पास यह पांचों भी है उसकी क्षणभर भी स्थिति नहीं होगी।

अथ गुरुः।

[मूल] स्वधर्माचारनिरतः शास्त्रवेत्तार्थतत्त्ववित्।
निर्णेता धर्मवाक्यानामक्रोधी विजितेन्द्रियः॥६१॥(१.६१)

[मूल] लोभमोहविहीनश्च शिष्यवर्गकृपाकरः।
स्पष्टार्थवक्ता सद्धर्मोपदेष्टा गुरुरुच्यते॥६२॥(१.६२) ॥युग्मम्॥

(अन्वयः) स्वधर्माचारनिरतः, शास्त्रवेत्ता,अर्थतत्त्ववित्, धर्मवाक्यानां निर्णेता, अक्रोधी, विजितेन्द्रियः, लोभमोहविहीनः, शिष्यवर्गकृपाकरः, स्पष्टार्थवक्ता, सद्धर्मोपदेष्टा च गुरुः उच्यते।

(अर्थः) अपने धर्म के आचरण करने में मग्न, शास्त्र को जाननेवाला, तत्त्व के अर्थ को जाननेवाला, धर्मवाक्यों का योग्य निर्णय करनेवाला, अक्रोधी, इन्द्रियों को जितनेवाला, लोभमोह से विहीन, छात्र समूह पर कृपा करनेवाला, स्पष्ट अर्थ को कहनेवाला और सद्धर्म का उपदेश करनेवाला (ऐसा जो है वह) गुरु कहा जाता है।

अथोपासकः।

[मूल] अक्षुद्रः सुन्दरः पापभीरुर्लज्जादयान्वितः।
निर्गुणेषु च मध्यस्थो रागी परगुणेष्वपि॥६३॥(१.६३)

[मूल] कथकः पक्षयुक्तश्च दीर्घदर्शी च सौम्यदृक्।
वर्धिष्णुः सत्यवादी च विशेषज्ञो विवेकवित्॥६४॥(१.६४)

[मूल] उपकारी विनयवान् धीरः क्रोधविवर्जितः।
गम्भीरश्च गुणैरेतैरेकविंशतिभिर्युतः॥६५॥(१.६५)

[मूल] धर्मोपदेशपात्रं स्याद् भाग्यवानीदृशो नरः।
परीक्ष्य विधिवद्धर्मो वाच्यस्तस्मै विपश्चिता॥६६॥(१.६६)

(अन्वयः) अक्षुद्रः, सुन्दरः, पापभीरुः, लज्जादयान्वितः, निर्गुणेषु मध्यस्थः, परगुणेषु रागी च, कथकः पक्षयुक्तश्च, दीर्घदर्शी च, सौम्यदृक्, वर्धिष्णुः सत्यवादी च, विशेषज्ञो, विवेकवित्, उपकारी, विनयवान्, धीरः, क्रोधविवर्जितः, गम्भीरः एतैरेकविंशतिभिर्गुणैर्युतः ईदृशो भाग्यवान् नरः धर्मोपदेशपात्रं स्याद्, विपश्चिता विधिवद् परीक्ष्य तस्मै धर्मः वाच्यः।

(अर्थः) १) दुष्टता से रहित, २) सुन्दर, ३) पाप से डरनेवाला, ४-५)लज्जा और दया से युक्त, ६)निर्गुणिओं में मध्यस्थ और ७)परगुणों में राग करनेवाला ८)योग्य कथन करनेवाला, ९-१०) पक्ष (मातापिता का वंश) से युक्त, ११) दीर्घदृष्टिवाला, १२) सौम्यदृष्टिवाला, १३) बढनेवाला (=लोकप्रिय), १४) सत्य को कहनेवाला, १५) विशेष रूप से ज्ञानी, १६) विवेक से युक्त १७) उपकारी, १८)विनयवाला, १९) धैर्यवाला, २०) क्रोध से रहित, २१) गंभीर ये इक्कीस गुणों से युक्त (ऐसा मनुष्य उपासक होता है।) इस प्रकार भाग्यवान पुरुष धर्मोपदेश के लिए पात्र है। विद्वानों के द्वारा विधिवत् परीक्षा करके उसको धर्म कहना चाहिए।

अथ शिष्यः।

[मूल] राजवंश्योऽधिकारी वा व्यवसायी विदेशगः।
निर्धनत्वान्धकूपात्तु समुद्धार्यः सदैव हि॥६७॥(१.६७)

(अन्वयः) विदेशगः राजवंश्यः अधिकारी व्यवसायी वा निर्धनत्वान्धकूपात् तु सदैव हि समुद्धार्यः।

(अर्थः) विदेश में जानेवाले राजवंशीय, अधिकारी, व्यवसायी को निर्धनरूपी अन्धकार युक्त कुवे से सदा बाहर निकालना चाहिए।

[मूल] कस्यचित्प्रार्थनाभङ्गो नैव कार्यः स्वशक्तितः।
मदनज्वरतप्ताङ्गीं परनारिं विनानिशम्॥६८॥(१.६८)

(अन्वयः) मदनज्वरतप्ताङ्गीं परनारिं विना अनिशम् स्वशक्तितः कस्यचित् प्रार्थनाभङ्गो नैव कार्यः।

(अर्थः) कामासक्त पर स्त्री को छोडकर खुद की शक्ति से किसी की भी प्रार्थना का भंग नहीं करना चाहिए।

[मूल] धनेनान्नेन वस्त्रेण वचनेन प्रियेण वा।
अतिथिः सर्वदा पूज्यः सुशीतलजलेन वा॥६९॥(१.६९)

(अन्वयः) अतिथिः धनेन अन्नेन वस्त्रेण वा प्रियेण वचनेन वा सुशीतलजलेन सर्वदा पूज्यः।

(अर्थः) धन के द्वारा, अन्न के द्वारा, वस्त्र के द्वारा, प्रियवचन के द्वारा अथवा शीतलजल के द्वारा अतिथि की सदा पूजा करनी चाहिए।

[मूल] अतिथिर्विमुखो याति गृहात्तु गृहमेधिनः।
तस्य तद्दिनजं पुण्यं गृहित्वैव प्रयात्यसौ॥७०॥(१.७०)

(अन्वयः) गृहमेधिनः तु गृहात् अतिथिः विमुखो याति तस्य तद्दिनजं पुण्यं गृहित्वैव असौ प्रयाति।

(अर्थः) किन्तु गृहस्थ के घर से जो अतिथि विमुख(खाली हाथ) जाता है वह उस गृहस्थ के उस दिन का पुण्य लेकर ही जाता है।

[मूल] शुकपारापतश्येनमार्जारशुनकानपि।
वन्यानथ मृगादींश्च क्रीडार्थं नैव पालयेत्॥७१॥(१.७१)

(अन्वयः) अथ शुकपारापतश्येनमार्जारशुनकान्, वन्यान् मृगादिंश्च अपि क्रीडार्थं नैव पालयेत्।

(अर्थः) तोता, कबूतर,बाज, बिल्ली, कुत्ता आदि को और वन्य हरिण आदि को खेलने के लिए(मनोरंजन के लिए) नहीं पालना चाहिए।

[मूल] सा क्रीडा नैव कर्तव्या जीवद्रोहो भवेद्यया।
निन्दितः पापहेतुत्वाज्जीवद्रोहः स्वकामतः॥७२॥(१.७२)

(अन्वयः) यया जीवद्रोहो भवेत् सा क्रीडा नैव कर्तव्या स्वकामतः जीवद्रोहः पापहेतुत्वात् निन्दितः।

(अर्थः) जिस के द्वारा जीवद्रोह(जीव का नाश) होता है वह क्रीडा नहीं करनी चाहिए। खुद की इच्छा से किया हुआ जीवद्रोह पाप का कारण होने से निन्दित है।

[मूल] दया धर्मतरोर्मूलं क्षमा विज्ञानशाखिनः।
गुणानां विनयो मूलं नाशमूलं सगर्वता॥७३॥(१.७३)

(अन्वयः) धर्मतरोर्मूलं दया, विज्ञानशाखिनः क्षमा, गुणानां मूलं विनयः, नाशमूलं, सगर्वता।

(अर्थः) धर्म रूपी वृक्ष का मूल दया है, ज्ञान रूपी वृक्ष का मूल क्षमा है, गुणों का मूल विनय है और नाश का मूल गर्व है।

[मूल] दुराचारपरो धृष्टः पुण्यवन्तं विनिन्दति।
नूनं कलेः प्रभावोऽयं विद्वान्मूर्खेण जीयते॥७४॥(१.७४)

(अन्वयः) दुराचारपरो धृष्टः पुण्यवन्तं विनिन्दति नूनं कलेः प्रभावः अयं विद्वान् मूर्खेण जीयते।

(अर्थः) दुराचार से युक्त कपटी(विश्वासघाती) पुरुष पुण्यवान् पुरुष की निन्दा करता है। सच में कलियुग का यह प्रभाव है (जो)विद्वान् मूर्ख के द्वारा जीता जाता है।

अथ मातापितरौ।

[मूल] श्रेयस्कारि मनोहारि नित्यमानन्ददायि च।
दुर्लभं मानुषे लोके पित्रोः सन्दर्शनं महत्॥७५॥(१.७५)

(अन्वयः) मानुषे लोके श्रेयस्कारि मनोहारि नित्यम् आनन्ददायि च पित्रोः सन्दर्शनं महत् दुर्लभम्।

(अर्थः) मनुष्य लोक में श्रेयस्कारी, मन का हरन करने वाले, सदा आनन्द को देनेवाले ऐसे माता पिता का सत्दर्शन बहुत ही दुर्लभ है।

[मूल] सर्वतीर्थमयौ ज्ञेयौ पितरौ पुण्यरूपिणौ।
तयोराज्ञां विना पुत्रो नैव तीर्थान्तरं व्रजेत्॥७६॥(१.७६)

(अन्वयः) पुण्यरूपिणौ पितरौ सर्वतीर्थमयौ ज्ञेयौ तयोः आज्ञां विना पुत्रः तीर्थान्तरं नैव व्रजेत्।

(अर्थः) पुण्यस्वरूप माता-पिता सर्व तीर्थस्वरूप है ऐसा जानना चाहिए। उनकी आज्ञा के विना पुत्र को अन्य तीर्थ को नहीं जाना चाहिए।

[मूल] पितरौ चेदनादृत्य मूर्खस्तीर्थपथं व्रजेत्।
हस्ताच्चिन्तामणिं त्यक्त्वा दूरस्थं काचमञ्चति॥७७॥(१.७७)

(अन्वयः) पितरौ अनादृत्य चेत् (यः) मूर्खस्तीर्थपथं व्रजेत्, (सः) हस्तात् चिन्तामणिं त्यक्त्वा दूरस्थं काचमञ्चति।

(अर्थः) यदि माता पिता का अनादर करके (जो) मूर्ख तीर्थ को जाता है (वह) हाथ से चिन्तामणि(चिन्तामणि रूपी रत्न) का त्याग करके दूर में स्थित काँच की इच्छा करता है।

[मूल] **यो न वेत्ति नरः कार्येष्वन्तरं पुण्यपाप्मनोः।**
चतुरः पण्डितम्मन्योऽप्यसतामग्रणीस्तु सः॥७८॥(१.७८)

(अन्वयः) यो नरः पुण्यपाप्मनोः कार्येषु अन्तरं न वेत्ति सः पण्डितम्मन्यः चतुरः अपि तु असताम् अग्रणीः।

(अर्थः) जो मनुष्य पुण्य और पाप के कार्यों में भेद या अन्तर को नहीं जानता वह खुद को पंडित माननेवाला चतुर होते हुवे भी दुर्जनों में अग्रेसर है।

[मूल] **जगदीशमहीपालगुरूणामपि सर्वदा।**
आज्ञाभङ्गं प्रकुर्वाणो नरो भवति किल्बिषी॥७९॥(१.७९)

(अन्वयः) अपि सर्वदा जगदीशमहीपालगुरूणाम् आज्ञाभङ्गं प्रकुर्वाणः नरः किल्बिषी भवति।

(अर्थः) सदैव जग के ईश्वर, राजा और गुरुओं की आज्ञा का भंग करता हुआ पुरुष पापी होता है।

[मूल] **व्यवहारेऽधिकारे वा न कुर्यात्कौतुकेष्वपि।**
जटिलिङ्गिद्विजातीनां कपटोद्घाटनं सुधीः॥८०॥(१.८०)

(अन्वयः) सुधीः व्यवहारे अधिकारे वा कौतुकेषु जटिलिङ्गिद्विजातीनां कपटोद्घाटनं न कुर्यात्।

(अर्थः) बुद्धिमान व्यक्ति को व्यवहार में, अधिकार में अथवा स्तुति में जटाधारी,लिङ्गि और ब्राह्मणों के रहस्य का उद्घाटन नहीं करना चाहिए।

[मूल] **वृथा परापवादादिकथाभिः पिशुनैः समम्।**
धर्मस्य समयो नैवाऽतिवाह्यः शुद्धबुद्धिना॥८१॥(१.८१)

(अन्वयः) शुद्धबुद्धिना पिशुनैः समं वृथा परापवादादिकथाभिः धर्मस्य समयो नैवाऽतिवाह्यः।

(अर्थः) शुद्धबुद्धिवाले लोगों के द्वारा कपट के समान व्यर्थ दुसरों की निन्दा इत्यादि के द्वारा धर्म के समय का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए।

[मूल] **देवे गुरौ धर्मशास्त्रे कपटं नाचरेद् बुधः।**
भाव्यं विशुद्धभावेन तेष्वादरवता सदा॥८२॥(१.८२)

(अन्वयः) बुधः देवे गुरौ धर्मशास्त्रे कपटं नाचरेद्, तेषु सदा विशुद्धभावेन आदरवता भाव्यम्।

(अर्थः) बुद्धिमान लोग को देव में, गुरुजनों में और धर्मशास्त्रों में कपट को नहीं करना चाहिए। उसमें सदैव शुद्धभावना के द्वारा आदरयुक्त रहना चाहिए।

[मूल] **तपस्विगुरुदेवर्षियोगिभिश्च समं क्वचित्।**
नैव वैरवता भाव्यं नरेण शुभमिच्छता॥८३॥(१.८३)

(अन्वयः) शुभं इच्छता नरेण तपस्विगुरुदेवर्षियोगिभिः च समं क्वचित् वैरवता नैव भाव्यम्।

(अर्थः) शुभ की इच्छा करने वाले पुरुष के द्वारा तपस्वी, गुरु, देव, ऋषि और योगिओं के साथ कभी भी वैरयुक्त नहीं रहना चाहिए।

[मूल] अनुरागश्च दयायामिन्द्रियवर्गस्य सन्ततं दमनम्।
वाच्यं वचनं सत्यं, त्वेतद्धर्मस्य हि रहस्यम्॥८४॥(१.८४) (आर्या)

(अन्वयः) दयायां अनुरागः, सन्ततम् च इन्द्रियवर्गस्य दमनम्, सत्यं तु वचनं वाच्यं हि एतद् धर्मस्य रहस्यम्।

(अर्थः) दया में आसक्ति, सदा इन्द्रिय के समूह का दमन(निरोध), सत्य वचन को कहना यह धर्म का रहस्य है।

[मूल] शीलं न खण्डनीयं, न सन्निवासः समं कुशीलैश्च।
गुरुवचनाद्यस्खलनं, धर्मस्यायं हि परमार्थः॥८५॥(१.८५) (आर्या)

(अन्वयः) शीलं न खण्डनीयम्, कुशीलैः च समं न सन्निवासः, गुरुवचनाद् अस्खलनं धर्मस्य अयं हि परमार्थः।

(अर्थः) शील का खंडन न होने देना, दुष्टाचारिओं के साथ न रहना और गुरुवचन का भंग न करना यही धर्म का परमार्थ है।

[मूल] सुजन्म विमले कुले नृपतिसद्मसन्मान्यता।
मुहुः प्रियसमागमोद्भवसुखं च लक्ष्मीः स्थिरा।
शशाङ्कधवलं यशः सदसि वाक्पटुत्वं नृणाम्।
दिशत्यनिशमर्जितः सुकृतकल्पवृक्षः फलम्॥८६॥(१.८६) (पृथ्वी)

(अन्वयः) विमले कुले सुजन्म, नृपतिसद्मसन्मान्यता, मुहुः प्रियसमागमोद्भवसुखं च स्थिरा लक्ष्मीः, शशाङ्कधवलं यशः, सदसि वाक्पटुत्वं नृणां दिशत्यनिशं अर्जितः सुकृतकल्पवृक्षः फलम्।

(अर्थः) पवित्र कुल में अच्छा जन्म, राजा के दरबार में सम्मान, बार बार प्रिया के समागम से उत्पन्न होनेवाला सुख और स्थिर लक्ष्मी, चन्द्रमा की धवलता के समान यश, विद्वानों की सभा में वाक्पटुता इस प्रकार मनुष्यों को प्राप्त किए हुए सुकृत रूपी कल्पवृक्ष फल देता है।

[मूल] गौरा भाति च यस्य गौरवगुणैर्विश्वम्भरेवापरा
रत्नालङ्कृतिसोज्ज्वलाखिलपरस्त्रीसोदरस्य प्रिया।
शृङ्गारादिरसेन कान्तसुभगा सङ्ग्रामसिंहस्य धी-
सिन्धौ धर्मतरङ्ग एष शुभदस्त्वाद्योऽनव-द्योऽभवत्॥८७॥(१.८७)

(अन्वयः) यस्य च अखिलपरस्त्रीसोदरस्य रत्नालङ्कृतिसोज्ज्वला गौरवगुणैः अपरा विश्वम्भरा इव शृङ्गारादि-रसेन कान्तसुभगा प्रिया गौरा भाति (तस्य) सङ्ग्रामसिंहस्य धीसिन्धौ एष शुभदः आद्यः अनवद्यः धर्मतरङ्गः अभवत्।

(अर्थः) परस्त्री के भाइ समान जिसकी रत्न और अलङ्कार से उज्ज्वल, गौरवगुण से दूसरी पृथ्वी के समान, शृङ्गारादि रसों से कान्त और सुभग गौरा नामक पत्नी है उस सङ्ग्रामसिंह विरचित बुद्धिसागर ग्रंथ में पहला निर्दोष धर्मतरङ्ग (पूर्ण) हुआ।

इति श्रीसङ्ग्रामसिंहविरचिते बुद्धिसागरे धर्मतरङ्गः प्रथमः॥१॥

[द्वितीयो नयतरङ्गः]

[मूल] **जयति जगत्त्रयजननी देवी वाग्वादिनी जगद्वन्द्या।**
यत्स्मरणाभरणौघैः कविता कमनीयतां याति॥८८॥(२.१)

(अन्वयः) यत् स्मरणाभरणौघैः कविता कमनीयतां याति (सा) जगद्वन्द्या, जगत्त्रयजननी, वाग्वादिनी देवी जयति।

(अर्थः) जिसके स्मरण रूप आभरण से काव्य चाहने योग्य होता है ऐसी जगत की वन्दनीय, तीनों लोक की जननी सरस्वती देवी विजयी हो।

[मूल] **श्रीवीतरागपदपङ्कजचञ्चरीको वाग्वादिनीचरणचिन्तनचित्तवृत्तिः।**
सङ्ग्रामनामकविकल्पतरुः करोति, धीसागरं नयतरङ्गकरम्बितार्थम्॥८९॥(२.२)

(अन्वयः) श्रीवीतरागपदपङ्कजचञ्चरीकः, वाग्वादिनीचरणचिन्तनचित्तवृत्तिः, सङ्ग्रामनामकविकल्पतरुः नयतरङ्गकरम्बितार्थं धीसागरं करोति।

(अर्थः) श्री महावीर के चरणरूपी कमल के भ्रमर के समान, सरस्वती के स्वरूप का चिन्तन करने में चित्तवृत्तिवाला, संग्राम नामक कविश्रेष्ठ नय रूपी तरंगों से मिश्रित विषयवाले बुद्धिसागर की रचना करता है।

[मूल] **युक्तं समौ सज्जनदुर्जनावुभौ यतो भवेतां खलु पापहारिणौ।**
सन्दर्शनात् संसदि दोषवादात्तच्चित्रमेको गतिमेति नापरः॥९०॥(२.३)

(अन्वयः) सज्जनदुर्जनौ उभौ समौ (इति) युक्तं, यतः संसदि सन्दर्शनात् दोषवादात् पापहारिणौ खलु भवेताम्, एको गतिमेति नापरःतच्चित्रम्।

(अर्थः) सज्जन और दुर्जन समान है यह बात सही है क्यों कि (सज्जन) दर्शन से पाप का हरण करता है और (दुर्जन) सभा में (हमारे) दोष कहकर पाप का हरण करता है। आश्चर्य केवल इस बात का है कि- एक (सज्जन) गति (सद्गति) को प्राप्त करता है और दूसरा गति (सद्गति) को प्राप्त नहि करता है।

[मूल] **सुवर्णालङ्कृता शुद्धा स्वदेशीयकवेः कृतिः।**
सुवृत्तापि गृहस्त्रीव दुर्वृत्तेभ्यो न रोचते॥९१॥(२.४)

(अन्वयः) स्वदेशीयकवेः सुवर्णालङ्कृता, सुवृत्ता शुद्धा अपि कृतिः दुर्वृत्तेभ्यो (नरेभ्यः) गृहस्त्रीव न रोचते।

(अर्थः) शिथिल चारित्रवाले पुरुषों को अपनी सोने से अलंकृत , शुद्ध और सच्चारित्रसंपन्न स्त्री भी अच्छी नही लगती। उसी तरह शिथिल कवि को अपने देश के कवि की अच्छे शब्दों से अलंकृत , दोषरहित और अच्छे वृत्तों में बद्ध कविता भी अच्छी नही लगती।

[मूल] अथ सङ्ग्रामसिंहोऽसौ दुर्जनेऽपि दयापरः।
नृपोद्देशेन कुरुते हितं सर्वजनेष्वपि॥९२॥(२.५)

(अन्वयः) अथ दुर्जनेऽपि दयापरः असौ सङ्ग्रामसिंहो नृपोद्देशेन सर्वजनेषु अपि हितं कुरुते।

(अर्थः) दुर्जन पर भी दया करने वाला ऐसा यह संग्रामसिंह, राजा के उद्देश्य से सभी जनों में हित(कल्याण) को करता है।

[मूल] सङ्ग्रामोक्तहितैर्येषां न गता दुष्टचित्तता।
तरणेः किरणैर्घूको दिवान्धः कस्य दोषतः॥९३॥(२.६)

(अन्वयः) सङ्ग्रामोक्तहितैः येषां दुष्टचित्तता न गता तरणेः किरणैः घूकः दिवान्धः कस्य दोषतः?

(अर्थः) संग्राम के द्वारा कहे गए हितों से जिनकी दुष्टचित्तता नही गयी वहाँ किस का दोष हैं? जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश होते हुए भी दिन में उल्लू अंधा है वहां किस का दोष हैं?

[मूल] धर्मेण राज्यलाभः स्याद्राज्यवृद्धिर्नयेन च।
अतोऽत्र नयरत्नानां पद्धतिं चतुरोचिताम्॥९४॥(२.७)

[मूल] नरदेवहितां रम्यां सङ्ग्रामैकजयप्रदाम्।
विश्वोपकारिणीं शुद्धां सङ्क्षेपाद्रचयत्यसौ॥९५॥(२.८) ॥युग्मम्।

(अन्वयः) धर्मेण राज्यलाभः नयेन राज्यवृद्धिः च स्यात्, अतः अत्र सङ्क्षेपात् चतुरोचितां नरदेवहितां रम्यां सङ्ग्रामैकजयप्रदां विश्वोपकारिणीं नयरत्नानां शुद्धां पद्धतिम् असौ रचयति।

(अर्थः) धर्म से राज्यलाभ और नीति से राज्य की वृद्धि होती है अतः संक्षेप से विद्वानों के योग्य, मनुष्यदेवों के हितवाली, रमणीय, युद्ध में विजय को देनेवाली, विश्व पर उपकार करनेवाली विशुद्ध ऐसी नीतिरत्न की पद्धति की(यह संग्रामसिंह) रचना करता है।

अथ राजा।

[मूल] राजा राज्ञी कुमारश्च मन्त्रिणश्चाधिकारिणः।
प्रजेत्युक्तक्रमाणां च विधेयमधुनोच्यते॥९६॥(२.९)[१]

(अन्वयः) राजा, राज्ञी, कुमारश्च मन्त्रिणः, अधिकारिणः च प्रजेत्युक्तक्रमाणां च अधुना विधेयम् उच्यते।

(अर्थः) राजा, रानी, कुमार, मंत्री, अधिकारी और प्रजा इस क्रम से विधेय (क्या करना चाहिए इसको) को अब कहते है।

[मूल] राजा वृद्धोपसेवी स्याद्दक्षो नात्युग्रदण्डकृत्।
अदीनवचनः शूरो धर्मी षाड्गुण्यवित्सुधीः॥९७॥(२.१०)

---

१. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

(अन्वयः) वृद्धोपसेवी, नात्युग्रदण्डकृत्, दक्षः, अदीनवचनः, शूरः, धर्मी, षाड्गुण्यवित्, सुधीः राजा स्याद्।

(अर्थः) वृद्धों की सेवा करनेवाला, अधिक कठोर दण्ड को न करनेवाला, जागरूक, दीन वचनों से रहित, शूरवीर और धार्मिक इन छह गुणों को जाननेवाला बुद्धिमान् राजा होता है।

[मूल] परीक्ष्यकारी सोत्साहो रिपुरन्ध्रैकदृष्टिदः।
वृद्धिव्ययविचारज्ञः स्मरत्युपकृतं च यः॥९८॥(२.११)

[मूल] दृढप्रतिज्ञो मेधावी शक्तित्रयसमन्वितः।
अकर्णदुर्बलो यायी, ह्यसन्तोषी रिपोर्जये॥९९॥(२.१२)

[मूल] सर्वव्यसननिर्मुक्तो युद्धविद्यादिभिः सदा।
विभक्तकालः सर्वत्र सावधानः प्रियंवदः॥१००॥(२.१३)

[मूल] यत्नवानात्मरक्षासु गूढमन्त्रः प्रतापवान्।
सुगुप्तरागरोषश्च भृत्येष्वननुसूचकः॥१०१॥(२.१४) ॥चतुर्भिः कुलकम्।

(अन्वयः) परीक्ष्यकारी, सोत्साहः, रिपुरन्ध्रैकदृष्टिदः, वृद्धिव्ययविचारज्ञः, उपकृतं च यः स्मरति, दृढप्रतिज्ञः, मेधावी, शक्तित्रयसमन्वितः, अकर्णदुर्बलः, यायी, रिपोर्जये ह्यसन्तोषी, सर्वव्यसननिर्मुक्तः, सर्वत्र सावधानः, प्रियंवदः, सदा युद्धविद्यादिभिः विभक्तकालः, आत्मरक्षासु यत्नवान्, गूढमन्त्रः, प्रतापवान्, भृत्येषु अननुसूचकः, सुगुप्तरागरोषः च (राजा भवति)।

(अर्थः) निरीक्षण करके कार्य करनेवाला, उत्साहसंपन्न, शत्रु की निश्चित त्रुटि को(बल रहित स्थान को) देखनेवाला, जमाखर्च(आय-व्यय) का विचार करनेवाला, उपकार का स्मरण करनेवाला, प्रतिज्ञापरायण, तीन प्रकार की शक्ति (धनशक्ति, सैन्यशक्ति, बुद्धिशक्ति) से युक्त, अकर्णदुर्बल, (प्रजा के बीच) जानेवाला, शत्रु को जितने के लिये असंतोषी रहनेवाला, सभी प्रकार के व्यसनों से मुक्त, सदैव सावधान रहनेवाला, प्रिय वचन कहनेवाला और युद्धविद्या आदि में समय को बांटनेवाला, आत्मरक्षा में तत्पर, गूढ मंत्रणावाला, प्रतापी,सेवक को बार बार सूचना न देनेवाला, जिसका आनंद और क्रोध गुप्त है वह राजा है।

[मूल] यामे च पश्चिमे नित्यं वेणुवीणादिजैः स्वनैः।
गीतवाद्यैश्च विविधैः प्रबुद्धः शयनं त्यजेत्॥१०२॥(२.१५)

(अन्वयः) नित्यं पश्चिमे यामे वेणुवीणादिजैः स्वनैः विविधैः गीतवाद्यैः च प्रबुद्धः(राजा) शयनं त्यजेत्।

(अर्थः) प्रतिदिन रात के अन्तिम प्रहर में वेणुवीणादि के (मधुर) ध्वनि से, विविध प्रकार के गीतवाद्यों के द्वारा प्रबुद्ध ऐसा राजा निद्रा(शयनासन) को त्याग दे।

[मूल] कृतदेहविशुद्धिश्च गतालस्यो जितेन्द्रियः।
संस्मृत्य परमात्मानं जगत्कर्तारमव्ययम्॥१०३॥(२.१६)

[मूल] संसारसिन्धुतरणे सेतुमव्यक्तरूपिणम्।
इति यश्चिन्तयेन्नित्यं चरचारुविलोचनः॥१०४॥(२.१७)

[मूल] **अधिकारनियुक्तानां मध्ये को हितकारकः?।**
को दण्ड्यः? कश्च पूजार्हः? प्रेषणीयोऽस्ति कः क्वचित्?॥१०५॥(२.१८)

[मूल] **कस्मिन् देशे च गन्तव्यम्? कः शत्रुः? किं बलं मम?।**
कोशे राज्यतरोर्मूले का वृद्धिः? को व्ययो दिने?॥१०६॥(२.१९) (चतुर्भिः कुलकम्)

(अन्वयः) कृतदेहविशुद्धिः, गतालस्यः, जितेन्द्रियः, चरचारुविलोचनः यः (स) संसारसिन्धुतरणे अव्यक्तरूपिणं सेतुं जगत्कर्तारम्, अव्ययम् परमात्मानं संस्मृत्य अधिकारनियुक्तानां मध्ये को हितकारकः?, को दण्ड्यः?, कश्च पूजार्हः?, कः क्वचित् प्रेषणीयोऽस्ति?, कस्मिन् देशे च गन्तव्यम्?, कः शत्रुः?, किं बलं मम?, राज्यतरोः मूले कोशे का वृद्धि?, को व्ययो दिने? इति नित्यं चिन्तयेत्।

(अर्थः) जिसने देह की शुद्धि की है, जिसका आलस गया है, जिसने इंद्रियों को जिता है, गुप्तचरों में जिसकी अच्छी आखें है ऐसा, जो संसार रूपी सागर को तरने के लिए सेतु समान,जगत के कर्ता, अव्यक्तरूपी, जिसका कभी नाश होता नहीं ऐसे परमात्मा का स्मरण करके अधिकारनियुक्ति में कौन हितकारक है?, कौन दण्डनीय है?, कौन पूजा योग्य है?, कौन कहा भेजने योग्य है? और कौन से देश में जाना चाहिए?, शत्रु कौन है?, मेरा बल क्या है?, राज्यरूपी वृक्ष के मूल ऐसे कोश में वृद्धि कैसे (होगी)?, दिन में व्यय क्या हैं? इस प्रकार नित्य चिंतन करना चाहिए।

[मूल] **सुज्ञातं भक्षयेद्दन्तकाष्टं प्रातरुदङ्मुखः।**
मुकुरादौ मुखं दृष्ट्वा पञ्चाङ्गश्रवणं ततः॥१०७॥(२.२०)

(अन्वयः) प्रातः उदङ्मुखः सुज्ञातं दन्तकाष्ठं भक्षयेत्, ततः मुकुरादौ मुखं दृष्ट्वा पञ्चाङ्गश्रवणम्।

(अर्थः) सुबह पश्चिम दिशा में मुख करके अच्छी तरह से जानकर दंतकाष्ठ का भक्षण करे, उसके बाद आयने में मुख को देखकर पंचांग का श्रवण करें।

[मूल] **पञ्चाङ्गं प्रातरुत्थाय यः शृणोति नराधिपः।**
दुर्दशा दुर्यशो नश्येत्तस्य दुःस्वप्नजं फलम्॥१०८॥(२.२१)

(अन्वयः) यः नराधिपः प्रातः उत्थाय पञ्चाङ्गं शृणोति, तस्य दुःस्वप्नजं फलं दुर्दशा दुर्यशः नश्येत्।

(अर्थः) जो नराधिप सुबह उठकर पंचांग सुनता है उसका दुष्ट स्वप्न से उत्पन्न हुआ फल, दुर्दशा, दुष्ट कीर्ति नष्ट होती है।

[मूल] **प्राणाचार्यवचः कुर्यान्नित्यदानं वितीर्य च।**
विनीतवेषाभरणस्ततो धर्मसभां विशेत्॥१०९॥(२.२२)

(अन्वयः) प्राणाचार्यवचः कुर्यात्, विनीतवेषाभरणः नित्यदानं वितीर्य, ततः च धर्मसभां विशेत्।

(अर्थः) प्राण के समान आचार्य की आज्ञा का पालन करें, विनीत वेशाभरण किया हुआ(राजा) नित्य दान को देकर धर्म सभा में प्रवेश करे।

[मूल] सुदृष्टिदानसन्मानैः शुभसम्भाषणेन च।
नियोगांश्चैव कार्येषु सर्वान् सम्मानयेत्क्रमात्॥११०॥(२.२३)

(अन्वयः) सृदृष्टिदानसन्मानैः शुभसम्भाषणेन च कार्येषु क्रमात् सर्वान् नियोगान् सम्मानयेत्।

(अर्थः) अच्छी दृष्टि से, दान से, सन्मान से और शुभ संभाषण से क्रम से कार्यों में नियोगीओं का सन्मान करना चाहिए।

[मूल] स्वराष्ट्रे परराष्ट्रे च मित्रे शत्रौ चरेष्वपि।
मन्त्रिणाऽऽलोचयेत्सर्वं कार्यजातं महीपतिः॥१११॥(२.२४)

(अन्वयः) महीपतिः स्वराष्ट्रे परराष्ट्रे मित्रे शत्रौ च चरेषु अपि मन्त्रिणा सर्वं कार्यजातम् आलोचयेत्।

(अर्थः) राजा ने खुद के राष्ट्र के विषय में, दुसरे राष्ट्र के विषय में, मित्र के विषय में, शत्रु के विषय में, और गुप्तचरों के विषय में मंत्री के साथ सभी कार्य समूह का अवलोकन करना चाहिए।

[मूल] परेङ्गितज्ञो धीरश्च मेधावी वाक्पटुस्तथा।
प्राज्ञो यथोक्तवादी च चरो दुर्लक्षवेषवित्॥११२॥(२.२५)

(अन्वयः) परेङ्गितज्ञः, धीरः, मेधावी, वाक्पटुः च तथा प्राज्ञः, यथोक्तवादी, दुर्लक्षवेषवित् च चरः (भवति)

(अर्थः) दुसरों के इरादे (आंतरिक विचार)जानने वाला, धीर, बुद्धिमान्, बोलने में प्रविण, विद्वान्, जैसा है वैसे बोलने वाला और दूसरा पहचान न सके ऐसे वेष को धारण करने वाला ऐसा चर (होता है।)

[मूल] क्रूरं स्तब्धमसन्तुष्टं सालस्यं मुखरं शठम्।
अभक्तं तु त्यजेद् भृत्यं पालयेत्तमनीदृशम्॥११३॥(२.२६)

(अन्वयः) क्रूरम्, स्तब्धम्, असन्तुष्टम्, सालस्यम्, मुखरम्, शठम्, अभक्तं तु त्यजेत् (यः) अनीदृशं (तं) भृत्यं पालयेत्।

(अर्थः) क्रूर, मंद, असंतुष्ट, आलसी, वाचाल, धूर्त और अभक्त ऐसे (नोकर) का त्याग करो। जो ऐसा नही है उस का पालन करना चाहिए।

[मूल] दुष्टदण्डः साधुपूजा कोशवृद्धिर्नयेन च।
अपक्षपातः सद्रक्षा नृपाणां यज्ञपञ्चकम्॥११४॥(२.२७)

(अन्वयः) दुष्टदण्डः, साधुपूजा, नयेन कोशवृद्धिः, अपक्षपातः, सद्रक्षा च नृपाणां यज्ञपञ्चकम्।

(अर्थः) दुष्टों के लिए दंड, साधु की पूजा, नीति से कोश की वृद्धि, भेदभाव न करना, और सत्य की रक्षा करना ये राजाओं के पांच यज्ञ हैं।

[मूल] मृगया द्युतपानानि गर्हितानि त्यजेन्नृपः।
तेभ्यो विपदमापन्नाः पाण्डुनैषधवृष्णयः॥११५॥(२.२८)

(अन्वयः) नृपः मृगया, गर्हितानि द्यूतपानानि त्यजेत्, तेभ्यः पाण्डुनैषधवृष्णयः विपदम् आपन्नाः।

(अर्थः) राजा को शिकार, निंदित ऐसी द्यूतक्रीडा, सुरापान (आदि) का त्याग करना चाहिए। उससे युधिष्ठिर, नल और यादव संकट को प्राप्त हो गए थे।

[मूल] अभ्यासः सर्वदा कार्यः सर्वविद्यासु पार्थिवैः।
राजा सर्वकलायुक्तः शशाङ्क इव शोभते॥११६॥(२.२९)

(अन्वयः) पार्थिवैः सर्वविद्यासु अभ्यासः सर्वदा कार्यः। (स)राजा सर्वकलायुक्तः शशाङ्क इव शोभते।

(अर्थः) राजाओं कों सदा सभी विद्याओं में (का) अभ्यास करना चाहिए। सब कलाओं से संपन्न ऐसा राजा चंद्र की तरह शोभता है।

[मूल] कामलोभादिभिर्लोको रौरवे मज्जति ध्रुवम्।
यथापराधदण्डेन यदि राज्ञा न धार्यते॥११७॥(२.३०)

(अन्वयः) यदि यथापराधदण्डेन राज्ञा लोकः न धार्यते, (तर्हि) कामलोभादिभिः (सः) ध्रुवं रौरवे मज्जति।

(अर्थः) अगर अपराधानुरूप दंड से राजा के द्वारा लोक धारण नहीं किया जाए, तो कामलोभादि के द्वारा वह लोक निश्चित हि नरक में डूबता है (डूबेगा)।

[मूल] प्राकारपरिखातोयधान्यदन्तितुरङ्गमैः।
शूराप्तयन्त्रदैवज्ञैः संयुक्तो दुर्ग उच्यते॥११८॥(२.३१)

(अन्वयः) प्राकारपरिखातोयधान्यदन्तितुरङ्गमैः शूराप्तयन्त्रदैवज्ञैः संयुक्तो दुर्ग उच्यते।

(अर्थः) राजदरबार, चारों तरफ से तट(खाई), जल, धान्य, हाथी, अश्व, वीर, स्वकीय जन, यंत्र, ज्योतिषी आदि से युक्त दुर्ग कहा जाता है।

[मूल] चतुरङ्गे बले पूर्णे यो न जातो स हीयते।
स्वचक्रपोषणेनैव क्षीणोऽसौ दुर्नयं भजेत्॥११९॥(२.३२)

(अन्वयः) यः चतुरङ्गे पूर्णे बले न जातो स हीयते स्वचक्रपोषणेनैव क्षीणः असौ दुर्नयं भजेत्।

(अर्थः) जो चार प्रकार के बल(हाथीदल, अश्वदल, रथीदल, पदाति) से युक्त नही है उसका नाश होता है। खुद के राज्य के पालन से ही क्षीण हुआ है ऐसा वह दुर्नीति को प्राप्त होगा।

[मूल] यस्य दुर्गं बलं तस्य यस्य दुर्गं स दुर्जयः।
यस्य स्थानबलं सम्यक् शुद्धपार्ष्णिः स उच्यते॥१२०॥(२.३३)

(अन्वयः) यस्य दुर्गं तस्य बलं यस्य दुर्गं स दुर्जयः यस्य सम्यक् स्थानबलं शुद्धपार्ष्णिः स उच्यते।

(अर्थः) जिसका दुर्ग है उसका बल है (इसी कारण से) जिसका दुर्ग है वह दुर्जय है। जिसका अच्छा राज्यबल, सेना की पिछाडी अच्छी है (सेना के पिछली भाग का रक्षण करनेवाला) वह राजा कहा जाता है।

[मूल] अशुद्धपार्ष्णिर्यो राजा परराष्ट्रं प्रयाति चेत्।
निश्चिन्तः सुखलोभेन स वशं वैरिणां व्रजेत्॥१२१॥(२.३४)

(अन्वयः) यः अशुद्धपार्ष्णिः राजा परराष्ट्रं प्रयाति चेत् निश्चिन्तः स सुखलोभेन वैरिणां वशं व्रजेत्।

(अर्थः) अशुद्ध ऐसी सेना की पिछाडी से युक्त ऐसा राजा अन्यदेश को अगर जाता है वह सुख के लोभ से निश्चित ऐसा वह दुष्टों के वश हो जाता है।

[मूल] सन्धिश्च विग्रहो यानं द्विधा मानं तथासनम्।
संशयश्चेति षाड्गुण्यं नृपाणां विजयप्रदम्॥१२२॥(२.३५)

(अन्वयः) सन्धिः च विग्रहः, यानम्, द्विधामानं तथा आसनम्, संशयः च इति षाड्गुण्यं नृपाणां विजयप्रदम्।

(अर्थः) समन्वय करना, युद्ध करना, रथ चलाना, भेद करना तथा शत्रु के विरुद्ध डटे रहना और संशय करना यह छह गुण राजा को जय प्रदान करनेवाले हैं।

[मूल] रात्रावुलूकवशगः काकस्तद्वशगो दिवा।
घूकस्तद्वच्च कालज्ञो बलाबलमुदीक्षयेत्॥१२३॥(२.३६)

(अन्वयः) रात्रौ काकः उलूकवशगः च दिवा तद्(काकः)वशगः घूकः, तद्वत् कालज्ञः (राजा) बलाबलं उदीक्षयेत्।

(अर्थः) रात में कौवा उल्लू के आधीन होता है और दिन में उल्लू कौवे के आधीन होता है, उसी प्रकार काल को जाननेवाला (राजा) बल अबल को देखे।

[मूल] हन्ति सिंहं जले नक्रः स्थले नक्रं च केसरी।
इति देशविभागज्ञः क्षितिपो दुर्जयं जयेत्॥१२४॥(२.३७)

(अन्वयः) नक्रः जले सिंहं हन्ति केसरी स्थले नक्रं (हन्ति) च इति देशविभागज्ञः क्षितिपो दुर्जयं जयेत्।

(अर्थः) मगरमच्छ जल में सिंह को मारता है, और भूमि पर सिंह मगरमच्छ को मारता है, अतः देशप्रदेश के विभाग को जाननेवाला राजा कठिन ऐसे शत्रु को जितता है।

[मूल] शत्रोरुन्मूलनं कार्यं विजितेनैव शत्रुणा।
कण्टकेन करस्थेन कण्टकोद्धरणं यथा॥१२५॥(२.३८)

(अन्वयः) करस्थेन कण्टकेन कण्टकोद्धरणं यथा (क्रियते तद्वत्) विजितेनैव शत्रुणा शत्रोरुन्मूलनं कार्यम्।

(अर्थः) जिस प्रकार हाथ में काटें को लेकर कांटा निकाला जाता है, उसी प्रकार जिते हुए शत्रू के द्वारा दुसरे शत्रु का नाश करे।

[मूल] इत्याचारविचारज्ञो देशकालविभागवित्।
निष्कण्टकं नृपो भुङ्क्ते स पृथ्वीं सप्तसागरीम्॥१२६॥(२.३९)

(अन्वयः) इति आचारविचारज्ञः देशकालविभागवित् स नृपः सप्तसागरीं निष्कण्टकं पृथ्वीं भुङ्क्ते ।

(अर्थः) इस प्रकार आचार विचार को जाननेवाला, देशकाल के विभाग को जाननेवाला ऐसा राजा सातसमुद्रों से युक्त, शत्रु से रहित ऐसे राज्य का उपभोग करता है।

[मूल] लघूनपि च वर्द्धयन् कुसुमितान् विचिन्वन् शनैः,
क्षिपन्कुटिलकण्टकान् बहिरसौ समुन्मूलितान्।
दृढं समधिरोपयन्विरहयन्मिथः संहतान्
भवेत्सुवनपालवत् कृतमतिः स्थिरो भूपतिः॥१२७॥(२.४०) (पृथ्वी)

(अन्वयः) लघूनपि वर्धयन्, कुसुमितान् शनैः विचिन्वन्, समुन्मूलितान् कुटिलकण्टकान् बहिः क्षिपन्, दृढं समधिरोपयन्, मिथः संहतान् विरहयन्, असौ कृतमतिः भूपतिः सुवनपालवत् स्थिरो भवेत्।

(अर्थः) राजा माली के समान होता है। जिस प्रकार माली छोटे पौधों को बढाता है, खीले हुए पौधों को हल्के से चुनता है,कांटोंवाले पौधों को मूल से उखाड कर फेंक देता है, एकमेक के साथ मिले हुए पौधों को अलग करता है। उस प्रकार राजा भी छोटे व्यक्ति को बढाता है, सज्ज व्यक्ति को चुनता है,नुकसान करनेवाले व्यक्ति को मूल से उखाड कर फेंक देता है, एकमेक के साथ मिले हुए व्यक्ति को अलग करता है। ऐसा राजा अपनी बुद्धि के अनुसार राज्य कर सकता है और स्थिर होता है।

अथ राज्ञी।

[मूल] कन्यां राजकुलोत्पन्नां राजलक्षणलक्षिताम्।
चारुशीलामहीनाङ्गीं यथाकालं समुद्वहेत्॥१२८॥(२.४१)

(अन्वयः) राजकुलोत्पन्नाम्, राजलक्षणलक्षिताम्, चारुशीलाम्, अहीनाङ्गीं कन्यां यथाकालं समुद्वहेत्।

(अर्थः) राजकुल में उत्पन्न, राज लक्षण से लक्षित (युक्त), सदाचरणी, अंगो से परिपूर्ण ऐसी कन्या से योग्य समय में विवाह करना चाहिए।

[मूल] कुरुपाति सपत्नीषु नित्यमीर्ष्यापरायणा।
स्वभर्तृनिन्दका चैव न सा योग्या नृपाङ्गना॥१२९॥(२.४२)

(अन्वयः) कुरुपाति सपत्नीषु नित्यम् ईर्ष्यापरायणा स्वभर्तृनिन्दका च एव सा नृपाङ्गना न योग्या।

(अर्थः) अति कुरूप अपने सौत के विषय में सदा ईर्ष्या करने में पारंगत और अपने पति की निंदा करनेवाली स्त्री राजा की पत्नी (होने के लिए) योग्य नही है।

[मूल] तुल्यसौन्दर्यगुणयोर्योग्यशीलवयस्कयोः।
दम्पत्योरनयोर्जातः कुमारो राज्यभाजनम्॥१३०॥(२.४३)

(अन्वयः) तुल्यसौन्दर्यगुणयोः योग्यशीलवयस्कयोः अनयोः दम्पत्योः जातः कुमारः राज्यभाजनं (भवति)।

(अर्थः) सौंदर्य और गुण जिसके समान है, जिसका सदाचरण और आयु योग्य है, ऐसे पति-पत्नी से जन्मा हुआ कुमार राज्य करने के लिए पात्र है।

अथ कुमारः।

[मूल] राज्ञा बाल्येऽपि पुत्रस्य शिक्षा कार्या प्रयत्नतः।
सरसो नम्रतां याति वंशोऽसौ नैव नीरसः॥१३१॥(२.४४)

(अन्वयः) राज्ञा प्रयत्नतः बाल्येऽपि पुत्रस्य शिक्षा कार्या, सरसः असौ वंशः नम्रतां याति, न नीरस एव।

(अर्थः) राजा के द्वारा प्रयत्न से बाल्य काल में ही पुत्र को शिक्षा देनी चाहिए, रस से युक्त ऐसा बांस हि नमता है, रस रहित नहि।

[मूल] पित्रा सुशिक्षितः पुत्रो न दुष्टव्यसनी भवेत्।
किं न बर्करवत् कुर्याद्राजपुत्रो निरर्गलः॥१३२॥(२.४५)

(अन्वयः) पित्रा सुशिक्षितः पुत्रः दुष्टव्यसनी न भवेत्, निरर्गलः राजपुत्रः बर्करवत् किं न कुर्यात्?

(अर्थः) पिता के द्वारा सुशिक्षित ऐसा पुत्र दुर्व्यसनी नही होता है, बंधनरहित बकरे के समान राजपुत्र क्या नहि करेगा?

[मूल] यस्तु राजकुमारोऽपि परिवारपराङ्मुखः।
दुष्टव्यसनसंसक्तो न राज्यं प्राप्नुयात्क्वचित्॥१३३॥(२.४६)

(अन्वयः) यः परिवारपराङ्मुखः दुष्टव्यसनसंसक्तः राजकुमारोऽपि क्वचित् राज्यं न प्राप्नुयात्।

(अर्थः) जो परिवार से विमुख हुआ है, दुष्टव्यसनों में आसक्त है, वह राजकुमार होते हुए भी राज्य को नहि प्राप्त करेगा।

[मूल] कुमारत्वेऽपि यः स्वाज्ञां प्रतापं जयपद्धतिम्।
न लिखेत् स्वशरैर्वक्षस्यरातेः स न राज्यभाक्॥१३४॥(२.४७)

(अन्वयः) यः कुमारत्वेऽपि स्वशरैः अरातेः वक्षसि स्वाज्ञां प्रतापं जयपद्धतिं न लिखेत् स न राज्यभाक्।

(अर्थः) जो कुमार होते हुवे भी खुद के बाणों से शत्रु के सीने पर खुद का आदेश (आज्ञा), पराक्रम और जयपद्धति (विजय) को न लिखे तो वह राज्य के योग्य नहि है।

[मूल] यौवराज्ये श्रुते यस्य रिपोस्तत्पितृधूमिते।
हृदये नोत्थितो वह्निः कथमग्रे स राज्यभाक्?॥१३५॥(२.४८)

(अन्वयः) तत्पितृधूमिते यौवराज्ये श्रुते यस्य रिपोः हृदये वह्निः नोत्थितो कथं अग्रे स राज्यभाक्?

(अर्थः) पिता के द्वारा धूमित ऐसे युवराज पद की बात सुनकर जिसके शत्रु के हृदय में अग्नि उत्थित नहि होता आगे वह कैसे राज्य से युक्त होगा?

अथ मन्त्रिणः।

[मूल] **सङ्ग्रामे विजयः पुण्यं राज्यवृद्धिर्यशो धनम्।**
दुरमात्ये विनश्यन्ति सम्भवन्ति सुमन्त्रिणि॥१३६॥(२.४९)

(अन्वयः) सङ्ग्रामे विजयः पुण्यं राज्यवृद्धिर्यशो धनं दुरमात्ये विनश्यन्ति सुमन्त्रिणि सम्भवन्ति।

(अर्थः) युद्ध में विजय, पुण्य, राज्य की वृद्धि, यशरूपी धन का दुष्ट मंत्री होने पर नाश होता है, और अच्छे मंत्री होने पर प्राप्ति होती है।

[मूल] **दुरमात्योपदेशेन कृते कार्ये त्वघं महत्।**
दुर्यशोभाजनं वह्निर्ग्रामदाहे न मारुतः॥१३७॥(२.५०)

(अन्वयः) दुरमात्योपदेशेन कृते कार्ये त्वघं महत्, ग्रामदाहे दुर्यशोभाजनं वह्निः, न मारुतः।

(अर्थः) दुष्ट मंत्री के उपदेश से कार्य करने पर राजाको भारी नुकसान होता है। गांव जलता है तो अपयश अग्नि को मिलता है, पवन को नहि।

[मूल] **अतो महीपतिर्दुष्टमकुलीनं स्ववंशजम्।**
अज्ञातशीलमहितं दुराचारं च दुर्मुखम्॥१३८॥(२.५१)

[मूल] **मूर्खमन्यायकर्तारं सदा लोभैकलोलुपम्।**
निर्दयं व्यसनासक्तं नामात्यत्वे नियोजयेत्॥१३९॥(२.५२) युग्मम्॥

(अन्वयः) अतो महीपतिः दुष्टम्, अकुलीनम्, स्ववंशजम्, अज्ञातशीलम्, अहितम्, दुराचारम्, दुर्मुखम्, मूर्खम्, अन्यायकर्तारम्, सदा लोभैकलोलुपम्, निर्दयम्, व्यसनासक्तं च नामात्यत्वे नियोजयेत्।

(अर्थः) इसी कारण दुष्ट, अकुलीन, अपने वंश में उत्पन्न, जिसका सदाचार ज्ञात नहि है, अहितवाला, दुष्टाचरणवाला, खराब भाषावाला, मन्द, अन्याय करनेवाला, केवल लोभ से, लालची को, दयाहीन, व्यसनों से युक्त ऐसे व्यक्ति को मंत्रिपद के लिए नियुक्त ना करे।

[मूल] **अनीतिज्ञः प्रधानादिपदाकाङ्क्षी दुराशयः।**
उच्चप्राप्ये फले नूनमुद्बाहुर्वामनो यथा॥१४०॥(२.५३)

(अन्वयः) (यः) नूनं दुराशयः, अनीतिज्ञः, प्रधानादिपदाकाङ्क्षी (अस्ति सः) उच्चप्राप्ये फले उद्बाहुः वामनः तथा (भवति)।

(अर्थः) जो सचमुच दुराशयी, नीति को न जाननेवाला, प्रधानपदादि की इच्छा करनेवाला वह ऊंचे फल की प्राप्ति के लिए हाथों को ऊपर किये हुवे वामन के समान है।

[मूल] **शरीरसुखलोभेन सेवालस्यं करोति यः।**
राजवल्लभतां याति कथं स गुणवानपि?॥१४१॥(२.५४)

(अन्वयः) यः शरीरसुखलोभेन सेवालस्यं करोति स गुणवानपि राजवल्लभतां कथं याति?

(अर्थः) जो शरीरसुख के लोभ से (राज) सेवा में आलस्य करता है, वह गुणों से युक्त होकर भी राजा के कृपा का पात्र कैसे होगा?

[मूल] मित्रभावेन यः कोऽपि मन्त्रं पृच्छति सादरम्।
तस्मै कूटोपदेष्टाऽसौ शिरश्छेत्ता कथं स न?॥१४२॥(२.५५)

(अन्वयः) यः कोऽपि मित्रभावेन सादरं मन्त्रं पृच्छति तस्मै कूटोपदेष्टासौ स शिरश्छेत्ता कथं न?

(अर्थः) जो कोइ मित्रता के भाव से आदरपूर्वक मन्त्रणा को पूछता है, उसको गुप्त बात करनेवाला (पुरुष) शिरच्छेदन करनेवाले की तरह नहि होता है?

[मूल] राजमानं समासाद्य परोपकरणं नरः।
करोति निःस्पृहत्वेन स यशस्वी नरोत्तमः॥१४३॥(२.५६)

(अन्वयः) (यः) नरः राजमानं समासाद्य निःस्पृहत्वेन परोपकरणं करोति स यशस्वी नरोत्तमः(अस्ति)।

(अर्थः) (जो) मनुष्य राजसंमान(मंत्रिपद) को प्राप्त करके इच्छा से रहित (होकर) परोपकार करता है वह यशस्वी पुरुष श्रेष्ठ है।

[मूल] यस्तु लञ्चैकलोभेन कार्यकारी स मध्यमः।
लञ्चां प्राप्य पुनः कार्यं न करोति महाधमः॥१४४॥(२.५७)

(अन्वयः) यः लञ्चैकलोभेन कार्यकारी स तु मध्यमः (यः) लञ्चां प्राप्य पुनः कार्यं न करोति (स) महाधमः।

(अर्थः) जो पैसे की लालच से कार्य को करता है, वह मध्यम है। (जो) पैसे को प्राप्त करके भी कार्य को नहि करता वह महा अधम है।

[मूल] एकेऽप्येवंविधाः सन्ति जननीदोषदायिनः।
परेषां लञ्चामादाय घ्नन्ति कार्याणि निष्ठुराः॥१४५॥(२.५८)

(अन्वयः) एकेऽपि एवंविधाः जननीदोषदायिनः सन्ति, परेषां लञ्चाम् आदाय निष्ठुराः(ते) कार्याणि घ्नन्ति।

(अर्थः) कोइ इस प्रकार जननी को दोष देने वाले होते हैं, दुसरों का धन स्वीकार करके निष्ठूर ऐसे कार्य का घात करते हैं।

[मूल] सङ्ग्रामो नवनीरदश्च सदृशावेतौ सुपुण्योन्नतौ
लोके जीवनदौ च निःस्पृहतया नित्योपकारप्रियौ।
तद्युक्तं परतापखण्डनमहापाण्डित्यवादस्तयो—
रेकस्त्यागपरः प्रसन्नवदनश्चित्रस्तथा नापरः॥१४६॥(२.५९)

(अन्वयः) सङ्ग्रामः नवनीरदश्च एतौ सुपुण्योन्नतौ सदृशौ, लोके जीवनदौ, निःस्पृहतया नित्योपकारप्रियौ च। तद्युक्तं तयोः परतापखण्डनमहापाण्डित्यवादः एकः त्यागपरः प्रसन्नवदनश्चित्रः तथा अपरः न।

(अर्थः) युद्ध और बादल में समानता है। दोनों पुण्य की उन्नति के कारण हैं, दोनों लोगों को जीवन देते हैं, दोनों निःस्पृह होने के कारण परोपकार रसिक हैं। अतः दोनों के बीच दूसरों के ताप दूर करने में कौन महापंडित है ? ऐसा वाद उचित है। आश्चर्य इस बात का है कि- एक (बादल) त्याग करने से प्रसन्न है, किंतु दूसरा(युद्ध) प्रसन्न नहि है।

[मूल] स कथं कथ्यते सद्भिर्नीतिशास्त्रैककोविदः।
वैरिणं विश्वसेद्यस्तु विषवैश्वानरोपमम्?॥१४७॥(२.६०)

(अन्वयः) यः विषवैश्वानरोपमं वैरिणं विश्वसेत्, सः सद्भिः नीतिशास्त्रैककोविदः कथं कथ्यते?

(अर्थः) जो विष और अग्नि के समान शत्रु पर विश्वास रखता है, वह विद्वानों कें द्वारा नीतिशास्त्रों में निपुण है, ऐसा कैसे कहा जाता है?

[मूल] दुर्जनोक्तानि वाक्यानि प्रियाणि मधुराण्यपि।
अकालकुसुमानीव विरुद्धं सूचयन्ति हि॥१४८॥(२.६१)

(अन्वयः) दुर्जनोक्तानि प्रियाणि मधुराणि वाक्यानि अपि अकालकुसुमानि इव विरुद्धं हि सूचयन्ति।

(अर्थः) दुर्जनों कें द्वारा कहा गए प्रिय और मधुर वाक्य भी असमयपर आने वाले फूल की तरह विपरीत हि सूचित करते हैं।

[मूल] अमर्षलोभमोहाद्यैः सभायां न्यायमन्यथा।
ब्रूते यस्तन्मुखं दृष्ट्वा नरः सूर्यं विलोकयेत्॥१४९॥(२.६२)

(अन्वयः) यः अमर्षलोभमोहाद्यैः सभायाम् अन्यथा न्यायं ब्रूते नरः तन्मुखं दृष्ट्वा सूर्यं विलोकयेत्।

(अर्थः) जो क्रोध, लोभ, मोह आदि के द्वारा सभा में विपरीत न्याय को कहता है, उस पुरुष का मुख देखकर सूर्य को देखना चाहिए।

[मूल] नृपमानाभिमानी यो वैरकारी समन्ततः।
यदि राजकुमारोऽपि नरः शीघ्रं विनश्यति॥१५०॥(२.६३)

(अन्वयः) नृपमानाभिमानी समन्ततः वैरकारी यः नरः(सः) यदि राजकुमारः अपि शीघ्रं विनश्यति।

(अर्थः) राजा के मान का अभिमान रखने वाला, सभी ओर से वैर करने वाला पुरुष यदि राजकुमार (हो) तो भी शीघ्र ही नष्ट होता है।

अथाधिकारिणः।

[मूल] धनोत्पत्तिमनालोच्य योऽधिकारी भवेन्नरः।
व्ययं कर्तुं(र्तुः) विनाऽऽयं वा तस्य स्वप्नेऽपि नो सुखम्॥१५१॥(२.६४)

(अन्वयः) यः नरः धनोत्पत्तिमनालोच्य अधिकारी भवेत्, विनाऽऽयं वा व्ययं कर्तुः तस्य स्वप्नेऽपि सुखम् न (भवेत्)।

(अर्थः) जिस प्रकार आमदनी का उपाय सोचे बिना खर्चा करनेवाला स्वप्न में भी सुखी नही होता उस प्रकार जो पुरुष धनोत्पत्ति का विचार न कर के अधिकारी होता है उस को स्वप्न में भी सुख नही होगा।

[मूल] नृपाधिकारी नृपतेर्नियोगिषु च वैरकृत्।
स यथा मकरद्वेषी जलावासी विनश्यति॥१५२॥(२.६५)

(अन्वयः) नृपतेः नियोगिषु वैरकृत् च स नृपाधिकारी यथा मकरद्वेषी जलावासी विनश्यति।

(अर्थः) राजा के-नियोगियों के साथ वैर करनेवाला नृपाधिकारी मकर का द्वेष करने वाले जलचर की तरह विनष्ट होता है।

[मूल] व्यापारी गणनालेख्ये शुद्धतां न करोति यः।
बन्धनं प्राप्नुयात्सोऽपि कोशकीट इवाऽऽत्मना॥१५३॥(२.६६)

(अन्वयः) यः व्यापारी गणनालेख्ये शुद्धतां न करोति, सः कोशकीट इव आत्मना बन्धनं प्राप्नुयात्।

(अर्थः) जो व्यापारी हिसाब में शुद्धता नही करता(रखता) है, वह कोशकीटक की तरह आत्मा के द्वारा बंधन को प्राप्त करता है।

[मूल] स्वसेवावसरे राजनिकटं नित्यमावसेत्।
वेष्टयन्ति समीपस्थं प्रायो वल्लीनृपस्त्रियः॥१५४॥(२.६७)

(अन्वयः) स्वसेवावसरे नित्यम् राजनिकटम् आवसेत्, प्रायः वल्लीनृपस्त्रियः समीपस्थं वेष्टयन्ति।

(अर्थः) सेवा के अवसर में सदा राजा के समीप रहना चाहिए, बहुधा वल्ली, नृप और स्त्रियां पास में स्थित को आलिंगन करती हैं।

[मूल] विनावसरमन्तर्यो याति भूपतिमन्दिरे।
स करोत्यरुचिं धृष्टो वसन्ततौ गुडो यथा॥१५५॥(२.६८)

(अन्वयः) यः विना अवसरं भूपतिमन्दिरे अन्तः याति, धृष्टः सः यथा वसन्ततौ गुडः (तथा) अरुचिं करोति।

(अर्थः) जो अवसर के बिना राजा के महल में अंदर जाता है वह धृष्ट जैसे वसंत ऋतु में गुड अरुचि करता है उसी प्रकार होता है।

[मूल] पार्थिवे मित्रता नास्ति निर्दये नास्ति धर्मता।
सलोभे गौरवं नास्ति सङ्ग्रामे नास्ति तत्त्रयम्॥१५६॥(२.६९)

(अन्वयः) पार्थिवे मित्रता नास्ति, निर्दये धर्मता नास्ति, सलोभे गौरवं नास्ति, सङ्ग्रामे च तत्त्रयं नास्ति ।

(अर्थः) धरती पर शासन करने वालों में मित्रता नहि होती, निर्दयी में धर्मता नहि होती, लोभी में गौरव नही होता और युद्ध में वह तीनों भी नहि होते।

[मूल] सहात्मकर्ममर्मज्ञैर्विरोधं प्रकरोति यः।
स वृक्षशाखामारुह्य तामेवाधो निकृतन्ति॥१५७॥(२.७०)

(अन्वयः) यः सहात्मकर्ममर्मज्ञैः विरोधं प्रकरोति सः वृक्षशाखाम् आरुह्य ताम् एव अधः निकृतन्ति।

(अर्थः) जो कर्म के मर्म को जानने वाले सहकर्मिओं के साथ विरोध करता है, वह वृक्ष के शाखा पर चढकर उसको हि नीचे से काटता है।

अथ प्रजा सेवकाश्च।

[मूल] राजा नेता न चेत्सम्यक् तत्प्रजाऽन्यैः प्रपीड्यते।
अकर्णधारा पवनैर्नौरिवाम्भोधिमध्यगा॥१५८॥(२.७१)

(अन्वयः) राजा सम्यग् नेता न चेत् तत् प्रजा अन्यैः प्रपीड्यते, पवनैः अकर्णधारा नौः अम्भोधिमध्यगा इव।

(अर्थः) राजा अच्छा नेता न हो तो उसकी प्रजा दूसरों के द्वारा पीडित की जाती है, (जैसे) चालक के बिना पवन के द्वारा सागर में गई हुई नौका भटकती है।

[मूल] प्रजा स्वजनयित्री यद्राज्ये दुःखसमाकुला।
तस्य धिग् जीवितं राज्ञो नामोच्चारेऽप्यघं महत्॥१५९॥(२.७२)

(अन्वयः) यद्राज्ये स्वजनयित्री प्रजा दुःखसमाकुला धिग् तस्य राज्ञः जीवितम्, (तस्य) नामोच्चारे अपि महद् अघम्।

(अर्थः) जिस राज्य में मा के समान प्रजा दुःखी है, उस राजा के जीवन को धिक्कार हो। (उसका) नाम लेने से भी बडा पाप होता है।

[मूल] यस्मिन् राज्ये प्रजापीडा कलहो यत्र मन्दिरे।
न तद्राज्यं न तद्वेश्म वने वासो वरं ततः॥१६०॥(२.७३)

(अन्वयः) यस्मिन् राज्ये प्रजापीडा, यत्र मन्दिरे कलहः(च), तत् न राज्यम्, तत् न वेश्मः, ततः वने वासः वरम्।

(अर्थः) जिस राज्य में प्रजा पीडित है, जिस मंदिर में कलह है वह राज्य नहि है, वह घर नहि है। उससे वन में रहना अच्छा है।

[मूल] त्यजेद्राजानमत्युग्रं कृतघ्नं कृपणं तथा।
कार्पण्यादविशेषज्ञं दुर्जनाधिष्ठिताङ्गणम्॥१६१॥(२.७४)

(अन्वयः) अत्युग्रं कृतघ्नं कृपणं तथा कार्पण्याद् अविशेषज्ञं दुर्जनाधिष्ठिताङ्गणं राजानं त्यजेत्।

(अर्थः) अतिशय क्रूर, कृतघ्न, कृपण, कृपणता के कारण सही-गलत का भेद समजने में असमर्थ, दुर्जनों को आश्रय देनेवाले राजा का त्याग करना चाहिए।

[मूल] राजा दुष्टः सुतो मूर्खो दुश्चरित्रवती प्रिया।
बान्धवैर्वैरमत्युग्रं हृदि शल्यचतुष्टयम्॥१६२॥(२.७५)

(अन्वयः) दुष्टः राजा, मूर्खः सुतः, दुश्चरित्रवती प्रिया, बान्धवैः अत्युग्रं वैरम्, हृदि शल्यचतुष्टयम्।

(अर्थः) दुष्ट राजा, मूर्ख पुत्र, दुष्ट चारित्रवती पत्नी, बांधवों के द्वारा अतिशय क्रूर ऐसा वैर ये हृदय में स्थित चार शल्य हैं।

[मूल] राज्ञो निन्दापरो नित्यं परोक्षे मन्त्रिणस्तथा।
स केवलं विषं प्राश्य जीविताशां करोत्यपि॥१६३॥(२.७६)

(अन्वयः) (यः) राज्ञः तथा मन्त्रिणः परोक्षे नित्यं निन्दापरः स केवलं विषं प्राश्य अपि जीविताशां करोति।

(अर्थः) जो राजा की तथा मंत्रियों की पीछे निंदा करने में सदा तत्पर रहता है वह विष को सेवन करके भी जीने की आशा करता है।

[मूल] महिषी राजमाता च प्रतीहारः पुरोहितः।
मुख्यो मन्त्री कुमारश्च षड् मान्या नृपवत्सदा॥१६४॥(२.७७)

(अन्वयः) महिषी, राजमाता, प्रतीहारः, पुरोहित, मुख्यमन्त्री कुमारश्च (एते) षट् सदा नृपवत् मान्याः।

(अर्थः) रानी, राजमाता, द्वारपाल, पुरोहित, मुख्यमंत्री और कुमार ये छह सदा राजा की तरह ही मानने योग्य हैं।

[मूल] दूरतो निष्फला सेवा निकटातिविनाशिनी।
युक्ता मध्यस्थता ह्यस्मिन् राज्ञि वह्नौ गुरौ स्त्रियाम्॥१६५॥(२.७८)

(अन्वयः) राज्ञि, वह्नौ, गुरौ, स्त्रियां दूरतः सेवा निष्फला निकटा अतिविनाशिनी (च) अस्मिन् हि मध्यस्थता युक्ता।

(अर्थः) राजा, वह्नि, गुरु, स्त्री इनकी दूर से किई हुई सेवा निष्फल है और पास से की हुई सेवा अतिशय विनाश करने वाली है, इनमें माध्यस्थ भाव ही योग्य है।

[मूल] धातुवादकुवाणिज्यद्युतदुर्नृपसेवया।
समृद्धये करोत्याशां वाहनाशां(वहन्नाशां) समृद्धये॥१६६॥(२.७९)

(अन्वयः) धातुवादकुवाणिज्यद्युतदुर्नृपसेवया समृद्धये आशां वहन् स मृतये आशां करोति।

(अर्थः) धातुवाद, वाणिज्य में अनीति, जूआ खेलके तथा बूरे राजाकी सेवा करके जो समृद्धि की आशा करता है वह मरण की आशा करता है।[१]

---

१. यहां पाठ संदिग्ध है, श्लोक का अर्थ अनुमान से किया है।

[मूल] न वाच्यं कुपिते राज्ञि हितं वाप्यहितं वचः।
शीतमप्यम्बु दोषाय नराणां तरुणज्वरे॥१६७॥(२.८०)

(अन्वयः) राज्ञि कुपिते (सति) हितम् अहितं वा वचः अपि न वाच्यम्, नराणां तरुणज्वरे शीतम् अम्बु अपि दोषाय।

(अर्थः) राजा क्रुद्ध होने पर, हित या अहित वचन भी नहि बोलने चाहिए, मनुष्य को चढते बुखार में थंडा जल भी दोष के लिए होता है।

[मूल] सुभटः स्वामिनं मुक्त्वा सङ्ग्रामाङ्गणमाश्रितम्।
पलायनपरो भीरुर्नरकं याति निश्चितम्॥१६८॥(२.८१)

(अन्वयः) सङ्ग्रामाङ्गणमाश्रितं स्वामिनं मुक्त्वा पलायनपरो भीरुः सुभटः निश्चितं नरकं याति।

(अर्थः) संग्राम के मैदान को प्राप्त ऐसे स्वामी को छोडकर पलायन में तत्पर ऐसा कायर योद्धा निश्चित ही नरक को प्राप्त होता है।

[मूल] स्वामिनोऽर्थे गतप्राणस्तस्य किञ्चिन्न साहसम्।
तत्साहसं रणाद् भ्रष्टो निर्लज्जः शूरसंसदि॥[१]१६९॥(२.८२)

(अन्वयः) स्वामिनोऽर्थे (यः) गतप्राणस्तस्य न किञ्चित् साहसं (किन्तु) तत्साहसं (यत्) रणाद् भ्रष्टः शूरसंसदि निर्लज्जः।

(अर्थः) अपने स्वामी के लिए (जिसने) अपने प्राणों को त्याग दिया है वह कोई अविचारी कृत्य नही हैं, लेकिन वह अपराध है जो रणभूमि से भ्रष्ट होकर शूरों की सभा में निर्लज्ज होकर बैठा हो।

[मूल] सङ्ग्रामाद्विमुखस्यास्य रौरवं तच्च तिष्ठतु।
तत्पत्नी स्वं मुखं नैव सखीनां दर्शयत्यपि॥१७०॥(२.८३)

(अन्वयः) सङ्ग्रामाद्विमुखस्यास्य रौरवं तच्च तिष्ठतु तत्पत्नी स्वं मुखमपि सखीनां नैव दर्शयति।

(अर्थः) रणभूमि से लौटकर आए हुआ पुरुष नरक में जाता है यह बात तो दूर की है उसकी पत्नी अपने सहेलियों को मुख दिखाने लायक भी नहि रहती।

अथ सर्वोपदेशः।

[मूल] न सभासु वदेत्प्राज्ञः परमर्माणि कर्हिचित्।
वञ्चनं स्वापमानं च गोप्यं नैव प्रकाशयेत्॥१७१॥(२.८४)

(अन्वयः) प्राज्ञः सभासु परमर्माणि कर्हिचित् न वदेत्। वञ्चनम्, स्वापमानम्, गोप्यं च नैव प्रकाशयेत्।

(अर्थः) बुद्धिमान को सभा में दूसरों के मर्म को कभी भी नही बोलना चाहिए। ठगाइ, अपना अपमान, गुप्त बात इनको कभी भी प्रकट नहीं करना चाहिए।

---

१. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

[मूल] तृतीयो न भवेद्यस्तु द्वयोर्मन्त्रं प्रकुर्वतोः।
यथावसरवक्ता च स विद्वान् स विचक्षणः॥१७२॥(२.८५)

(अन्वयः) मन्त्रं प्रकुर्वतोः द्वयोः यः तृतीयो न भवेत् , यथावसरवक्ता तु स विद्वान् स च विचक्षणः।

(अर्थः) दोनों के संभाषण में जो बीच में नहीं बोलता तथा अवसर आने पर बोलता है वही पण्डित और बुद्धिमान है।

[मूल] न मन्यते गुरोः शिक्षां शीर्णागारं निषेवते।
नीचसङ्गप्रसक्तो यस्तस्य न स्यात्सुखं क्वचित्॥१७३॥(२.८६)

(अन्वयः) (यः) गुरोः शिक्षां न मन्यते (किन्तु) शीर्णागारं निषेवते। नीचसङ्गप्रसक्तो यस्तस्य क्वचित् सुखं न स्यात्।

(अर्थः) (जो) गुरु की शिक्षा को नहि मानता अपितु व्यर्थ बातों का सेवन करता है और जो गलत संगति में पडा हुआ है उसको कभी भी सुख नही होता।

[मूल] अवाह्यवाहनान्नूनमभक्ष्यस्य च भक्षणात्।
अकरप्रार्थनात्पुंसां पातकं स्यात्पदे पदे॥१७४॥(२.८७)

(अन्वयः) अवाह्यवाहनात्, अभक्ष्यस्य भक्षणात्, अकरप्रार्थनात् च पुंसां पदे पदे नूनं पातकं स्यात्।

(अर्थः) वहन के अयोग्य वाहन का वहन करने से, अखाद्य का सेवन करने से तथा बिना हाथ जोडे प्रार्थना करने से मनुष्यों को पद पद पर पाप की प्राप्ति होती है।

[मूल] शत्रोश्च सुहृदो वापि गुणिनो निर्गुणस्य वा।
केषामपि न कर्तव्या निन्दा दौर्भाग्यदायिनी॥१७५॥(२.८८)

(अन्वयः) शत्रोश्च सुहृदो वापि गुणिनो निर्गुणस्य वा केषामपि निन्दा न कर्तव्या (निन्दा) दौर्भाग्यदायिनी ।

(अर्थः) शत्रु की, मित्र की, गुणवान की या गुणहीन की, किसी की भी निंदा नहि करनी चाहिए, (निंदा)दुर्भाग्य को देने वाली है।

[मूल] यः सौभाग्यं सार्वजन्यमीहते पुरुषोत्तमः।
सर्वेषां तेन कर्तव्यं परोक्षे गुणकीर्तनम्॥१७६॥ (२.८९)

(अन्वयः) यः पुरुषोत्तमः सार्वजन्यं सौभाग्यमीहते तेन सर्वेषां परोक्षे गुणकीर्तनं कर्तव्यम्।

(अर्थः) जो श्रेष्ठ पुरुष सभी जनसामान्य से सौभाग्य की इच्छा करता है तो, उसको परोक्ष में सभी के गुणों की प्रशंसा करनी चाहिए।

[मूल] मानं विहाय वाल्लभ्यं याति दौर्भाग्यमन्यथा।
कृच्छ्रात्कार्यं करो(र्यान्तकृन्) मानी हेलया सुभगो नरः[१]॥१७७॥(२.९०)

---

१. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

(अन्वयः) मानं विहाय वाल्लभ्यं याति, अन्यथा दौर्भाग्यम्, मानी कृच्छ्रात्कार्यकरो सुभगो नरः हेलया कार्यकरः।

(अर्थः) मान को छोडकर वल्लभता (प्रियता) को प्राप्त करता है, अन्यथा दौर्भाग्य को प्राप्त करता है,मानी पुरुष को कार्य करने की महेनत करनी पडती है, वहीं सुभग पुरुष का कार्य आसानी से होता है।

अथ राजवाहनाश्वलक्षणम्।

[मूल] तुरङ्गाः शतशो राज्ञा पालनीयाश्च सिन्धुजाः।
पूर्वोक्तं श्रूयते वाक्यं यस्याश्वास्तस्य मेदिनी॥१७८॥(२.९१)

(अन्वयः) राज्ञा सिन्धुजाः शतशः तुरङ्गाः पालनीयाः पूर्वोक्तं वाक्यं श्रूयते यस्याश्वास्तस्य मेदिनी।

(अर्थः) राजा के द्वारा सिन्धु देश में उत्पन्न सैंकडो घोडों का पालन करना चाहिए क्योंकि पूर्वपुरुषों कथन है कि जिसके पास घोडे होते हैं उसकी पृथ्वी होती है।

[मूल] निर्मांसो वदने प्रोथे चलः स्कन्धेऽतिबन्धुरः।
विशालोरस्कतायुक्तो लघुः स्यात्कर्णयोर्द्वयोः॥१७९॥(२.९२)

(अन्वयः) वदने निर्मांसः, स्कन्धे चलः, प्रोथे अतिबन्धुरः, विशालोरस्कतायुक्तः, कर्णयोर्द्वयोः लघुः स्यात्।

(अर्थः) उसके मुख में मांस नही होना चाहिए, उसकी चाल सुविख्यात होनी चाहिए, उसके कंधे झुके हुए होने चाहिए, उसका सीना विशाल होना चाहिए तथा उसके दोनों कान छोटे होने चाहिए।

[मूल] नेत्रे विशाले मणिवद्दीपमानातिनिर्मले।
मध्ये परिमितः पीनः पश्चात्पार्श्वद्वयोरपि॥१८०॥(२.९३)

(अन्वयः) नेत्रे विशाले मणिवद्दीपमानातिनिर्मले मध्ये परिमितः पश्चात् पार्श्वद्वयोरपि पीनः ।

(अर्थः) (उसकी) आँखें विशाल और मणि की तरह उज्ज्वल तथा निर्मल होनी चाहिए, बीच में पतला तथा दोनो बाजू से पुष्ट होना चाहिए।

[मूल] स्निग्धरोमोद्गमः पृष्ठे विशालो वायुवेगजित्।
आवर्तैश्च शुभैर्युक्तो निन्दितैश्च विवर्जितः॥१८१॥(२.९४)

(अन्वयः) पृष्ठे स्निग्धरोमोद्गमः विशालो वायुवेगजित् शुभैरावर्त्तैश्च युक्तो निन्दितैश्च विवर्जितः।

(अर्थः) (उसकी) पीठ पर स्निग्ध रोम होने चाहिए, वह विशाल होना चाहिए, शुभ लक्षणवाले भौंरों से युक्त तथा निंदित भौंरों से रहित होना चाहिए ।

[मूल] इत्यादि शालिहोत्रोक्तैर्लक्षणैर्लक्षितः शुभैः।
वाहितः सततं चारु गतिविद्भिर्भटैस्तु यः॥१८२॥(२.९५)

[मूल] सबलस्तरुणः शूरः शुद्धवंशसमुद्भवः।
राजवाहनयोग्योऽसौ मेदुरामण्डनं हयः॥१८३॥(२.९६)युग्मम्।

(अन्वयः) इत्यादिशालिहोत्रोक्तैः शुभैः लक्षणैः यः लक्षितः, गतिविद्भिः भटैः सततं चारु वाहितः, सबलः, तरुणः, शूरः, शुद्धवंशसमुद्भवः, राजवाहनयोग्योऽसौ हयः मेदुरामण्डनम् (वर्तते)।

(अर्थः) इस प्रकार शालिहोत्र के द्वारा बताये गये लक्षणों से लक्षित किया हुआ और गति में पारंगत योद्धाओं के द्वारा हमेशा अच्छी तरह वाहन किया हुआ, बलवान, तरुण, शूर तथा शुद्धवंश में उत्पन्न, राजा के वाहन के लिए योग्य ऐसा अश्व, अश्वशाला की शोभा बढाने वाला होता है।

अथ गजलक्षणम्।

[मूल] अश्वानां षट्सहस्री यद्भटानामयुतं तथा।
करोति नृपतेः कार्यं तदेकोऽपि मतङ्गजः॥१८४॥(२.९७)

(अन्वयः) यद् भटानामयुतम् अश्वानां षट्सहस्री करोति तथा तदेकोऽपि मतङ्गजः नृपतेः कार्यं करोति।

(अर्थः) राजा का जो कार्य दस हजार योद्धा तथा छः हजार घोडें करते हैं वही कार्य एक शक्तिशाली हाथी करता है।

[मूल] भद्रो मन्दो मृगश्चापि सङ्कीर्णश्चेति जातयः।
गजानां पालका(का अ)प्येते चतस्रः परिकीर्तिताः॥१८५॥(२.९८)

(अन्वयः) भद्रः, मन्दः, मृगः, सङ्कीर्णश्च इति चतस्रः गजानां जातयः। पालका अप्येते परिकीर्तिताः।

(अर्थः) भद्र, मंद, मृग और संकीर्ण ये हाथियों की जातियाँ हैं तथा महावत के भी चार प्रकार बताए गए हैं।

[मूल] सुन्दरावयवैर्युक्ता नात्युच्चा नातिवामनाः।
न स्थूला न कृशाश्चापि समगात्रविराजिताः॥१८६॥(२.९९)

[मूल] मधुसन्निभदन्ताश्च पृष्टवंशे धनुःसमाः।
वराहतुल्यजघना गजाः स्युर्भद्रजातिजाः॥१८७॥(२.१००)

(अन्वयः) सुन्दरावयवैः युक्ताः, नात्युच्चाः, नातिवामनाः, न स्थूला, न कृशाश्च समगात्रविराजिता अपि, दन्ताः मधुसन्निभाः, पृष्ठवंशे धनुःसमाः, वराहतुल्यजघना भद्रजातिजाः गजाः स्युः।

(अर्थः) सुन्दर अवयवों से युक्त, न ज्यादा ऊँचे, न नाटे(बौने), न मोटा ना ही पतला अपि तु सभी अवयवों से समान, जिसके दांत शहद के समान हो, पीठ का भाग धनुष्य के समान हो, सूअर की तरह जघन(=पेट का अधोभाग), अच्छे कुल में उत्पन्न होने वाले हाथी भद्र जाति के होते है।

[मूल] कक्षा वक्षोऽथ वलयः श्लथलम्बे गलोदरे।
कुक्षिः स्थूला च सैंहीव दृष्टिः स्यान्मन्ददन्तिनः॥१८८॥(२.१०१)

(अन्वयः) मन्ददन्तिनः कक्षा अथ वक्षः वलयः, गलोदरे श्लथलम्बे, कुक्षिः स्थूला च सैंहीव(सैन्धीव[१]) दृष्टिः स्यात्।

---

१. = सिंधु देश की घोडी

(अर्थः) मन्द जाति के हाथी के कक्ष(=बगल) और छाती गोलाकार होते है, गला और पेट शिथिल एवं लंबे होते है, पेट बडा होता है और आंखें सिंधु देश की घोडी जैसी होती है।

[मूल] हस्ताङ्घ्रिद्विजकर्णेषु सकण्ठेषु तनुश्च यः।
मेण्ढ्रवालाधरे ह्रस्वः स्थूलनेत्रो मृगः करी॥१८९॥(२.१०२)

(अन्वयः) यः हस्ताङ्घ्रिद्विजकर्णेषु सकण्ठेषु च तनुः ह्रस्वः मेण्ढ्रावालाधरे स्थूलनेत्रो मृगः करी।

(अर्थः) जिसके सूंढ, पैर कान और कंठ पतले हो; लिंग,बाल और होंठ छोटे हो और नेत्र बडे हो ऐसा मृग नामक हाथी होता है।

[मूल] परिणाहोच्चदैर्घ्येषु वसुबाणनगैः करैः।
मृगो गजः स्याद्धस्तैकद्विवृद्ध्या मन्दभद्रकौ॥१९०॥(२.१०३)

(अन्वयः) परिणाहोच्चदैर्घ्येषु वसुबाणनगैः करैः मृगो गजः स्यात्,हस्तैकद्विवृद्ध्या मन्दभद्रकौ (स्याताम्)।

(अर्थः) मृग नामक हाथी विस्तार में आठ हाथ का होता है, पांच हाथ उंचा होता है, सात हाथ लंबा होता है। मंद नामक हाथी हाथी विस्तार में नौ हाथ का होता है, छह हाथ उंचा होता है, आठ हाथ लंबा होता है। भद्र नामक हाथी विस्तार में दस हाथ का होता है, सात हाथ उंचा होता है, नौ हाथ लंबा होता है।

[मूल] चिह्नैः प्रत्यङ्गकथितैर्भद्रादीनां विमिश्रितैः।
दैर्घ्यादिमानैरमि(भि)तः प्रोक्तः सङ्कीर्णवारणः॥१९१॥(२.१०४)

(अन्वयः) भद्रादीनां प्रत्यङ्गकथितैः विमिश्रितैः चिह्नैः दैर्घ्यादिमानैः अभितः सङ्कीर्णवारणः प्रोक्तः।

(अर्थः) भद्र आदि हाथीओं के उपर कहे हुए मिश्रित चिह्नों से युक्त, दीर्घ आदि मान से रहित हाथी संकीर्ण कहा गया है।

[मूल] शूरो धीरः सुगतिमान् भद्रजातिसमुद्भवः।
मतङ्गजो महेन्द्रस्य वाहनार्थं प्रशस्यते॥१९२॥(२.१०५)

(अन्वयः) शूरः, धीरः, सुगतिमान्, भद्रजातिसमुद्भवो मतङ्गजो महेन्द्रस्य वाहनार्थं प्रशस्यते।

(अर्थः) शूर, धीर, अच्छी गतिवाला , भद्रजाति का हाथी राजा के वाहन हेतु प्रशस्त माना गया है।

[मूल] नदद्विजयदुन्दुभिप्रवरतूर्यतालव्रजैः स्फुरद्विविधनर्तनप्रसमितत्रिलोकीश्रमा।
सुवंशनृपमाश्रिता विमलकीर्तिसन्नर्तकी सदैव विलसत्यहो नयतरङ्गरङ्गाङ्गणे॥१९३॥
(२.१०६)(पृथ्वी)

(अन्वयः) नदद्विजयदुन्दुभिप्रवरतूर्यतालव्रजैः, स्फुरद्विविधनर्तनप्रसमितत्रिलोकीश्रमा, सुवंशनृपमाश्रिता सन्नर्तकी विमलकीर्तिः नयतरङ्गरङ्गाङ्गणे सदैव विलसति।

(अर्थः) अच्छे वंशमें जन्म प्राप्त राजा की विमल कीर्ति, निपुण नर्तकी की तरह हमेशा नीति रूपी आंगन में ही नृत्य करती है। उस नृत्य में (युद्ध की) विजय दुंदुभि का नाद ताल देता है, उस ताल के समूह से विविध प्रकार के नृत्य होता है जिससे तीन लोक का श्रम शांत होता है।

[मूल] **गौरा भाति च यस्य गौरवगुणैर्विश्वम्भरेवापरा**
रत्नालङ्कृतिसोज्ज्वलाखिलपरस्त्रीसोदरस्य प्रिया।
शृङ्गारादिरसेन कान्तसुभगा सङ्ग्रामसिंहस्य तत्
प्रोक्ते बुद्धिसुधाम्बुधौ नयतरङ्गोऽयं द्वितीयोऽभवत्[१]॥१९४॥(२.१०७) (शार्दूलविक्रीडित)

(अन्वयः) यस्य च अखिलपरस्त्रीसोदरस्य रत्नालङ्कृतिसोज्ज्वला गौरवगुणैः अपरा विश्वम्भरा इव शृङ्गारादि-रसेन कान्तसुभगा प्रिया गौरा भाति (तस्य) सङ्ग्रामसिंहस्य प्रोक्ते बुद्धिसुधाम्बुधौ अयं द्वितीयः नयतरङ्गः अभवत्।

(अर्थः) परस्त्री के भाइ समान जिसकी रत्न और अलङ्कार से उज्ज्वल, गौरवगुण से दूसरी पृथ्वी के समान, शृंगारादि रसों से कान्त और सुभग गौरा नामक पत्नी है उस संग्रामसिंह विरचित बुद्धिसागर ग्रंथ में दूसरा नयतरङ्ग (पूर्ण) हुआ।

॥इति श्रीसङ्ग्रामसिंहविरचिते बुद्धिसागरे द्वितीयो नयतरङ्गः॥

---

१. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

[तृतीयो व्यवहारतरङ्गः]

[मूल] **सङ्ग्रामसिंहोक्तसुवृत्तशोभिवचःकदम्बश्रवणान्नराणाम्।**
धर्मार्थयुक्सन्नययुक्तिभाजां न जायते कुव्यवहारबुद्धिः॥१९५॥(३.१)

(अन्वयः) धर्मार्थयुक्सङ्ग्रामसिंहोक्तसुवृत्तशोभिवचःकदम्बश्रवणात् सन्नययुक्तिभाजां नराणां कुव्यवहारबुद्धिः न जायते।

(अर्थः) धर्मार्थ से युक्त ऐसे संग्रामसिंह के द्वारा कहे हुए अच्छे वृत्त से शोभित वचन को सुनने से अच्छे नीतिमान मनुष्यों को दुर्व्यवहार में बुद्धि उत्पन्न नही होती।

[मूल] **सद्धर्मशास्त्रार्थविवेकविद्भिः समं सभासद्भिरपापबुद्ध्या।**
निर्णीय सम्यङ्नयतो नृपेण वाच्यस्तु लोकव्यवहार एषः॥१९६॥(३.२)

(अन्वयः) नृपेण सद्धर्मशास्त्रार्थविवेकविद्भिः सभासद्भिः समम् अपापबुद्ध्या सम्यग् नयतो निर्णीय एषो लोकव्यवहार तु वाच्यः।

(अर्थः) राजा ने सत् धर्म, शास्त्रार्थ, विवेक से युक्त ऐसे सभासदों के साथ अपाप बुद्धि से, सम्यक् नय से निर्णय करके यह लोकव्यवहार बोलना चाहिए।

[मूल] **कलौ नृपा लोभनिविष्टचित्ताः सत्या(भ्या)श्च लञ्चोल्लसदग्रहस्ताः।**
असत्यदम्भप्रवराश्च लोका गतं ततः सद्व्यवहारवृत्त्या॥१९७॥(३.३)

(अन्वयः) कलौ नृपा लोभनिविष्टचित्ताः, सत्या(भ्या)श्च लञ्चोल्लसदग्रहस्ताः, असत्यदम्भप्रवराश्च लोका ततः सद्व्यवहारवृत्त्या गतम्।

(अर्थः) कलिकाल में राजा लोभी है। अधिकारी वर्ग रिश्वत के लिये हाथ बढाते रहते है। साधारण जन असत्य और दंभ में कुशल है। (ऐसी स्थति में) सद्व्यवहार की बात व्यर्थ है।

[मूल] **विलोक्य लोकान् व्यवहारहीनान् सङ्ग्रामसिंहः सततं दयालुः।**
साधारणं सर्वजनानुकूलं प्रवक्ति किञ्चिद् व्यवहारवाक्यम्॥१९८॥(३.४)

(अन्वयः) दयालुः सङ्ग्रामसिंहः सततं व्यवहारहीनान् लोकान् विलोक्य, साधारणं सर्वजनानुकूलं किञ्चिद् व्यवहारवाक्यं प्रवक्ति।

(अर्थः) दयालु ऐसा संग्रामसिंह हमेशा व्यवहार से रहित लोगों को देखकर साधारण और सभी के लिए अनुकूल कुछ व्यवहार वाक्यों को कहता है।

[मूल] भवेद् गृहस्थः सततं नरः सद्व्यवहारवान्।
चतुर्वर्गफलं तस्य करस्थमिव लक्ष्यते॥१९९॥(३.५)

(अन्वयः) (यः) गृहस्थः नरः सततं सद्व्यवहारवान् भवेत् तस्य चतुर्वर्गफलं करस्थमिव लक्ष्यते।

(अर्थः) जो मनुष्य गृहस्थ हमेशा अच्छे व्यवहार से युक्त होता है उसका चतुर्वर्ग फल (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) करतल के ऊपर ही है ऐसा दर्शित होता है।

[मूल] गुरौ देवे च दैवज्ञे तीर्थे चैव भिषग्वरे।
यथा भवति विश्वासस्तथा फलमवाप्नुयात्॥२००॥(३.६)

(अन्वयः) गुरौ, देवे, दैवज्ञे, तीर्थे चैव भिषग्वरे, यथा विश्वासो भवति फलं तथा अवाप्नुयात्।

(अर्थः) गुरु, देव, ज्योतिषी, तीर्थ और श्रेष्ठ वैद्य में जितना विश्वास होता है उतने हि फल की प्राप्ति होती है।

[मूल] आचारे व्यवहारे च व्यवसाये सभासु च।
सत्येनापि न कुर्वीत शपथं गौरवापहम्॥२०१॥(३.७)

(अन्वयः) आचारे व्यवहारे च व्यवसाये सभासु च, सत्येनापि गौरवापहं शपथं न कुर्वीत।

(अर्थः) आचरण, व्यवहार, व्यवसाय और सभा में, सत्य होते हुए भी गौरव का नाश करनेवाली शपथ नहीं लेनी चाहिए।

[मूल] कुर्वन् कुव्यवहारं यो दृष्टः पूर्वं पतन्नधः।
पुनस्तेन न कर्तव्यो व्यवहारः सुधीमता॥२०२॥(३.८)

(अन्वयः) यो कुव्यवहारं कुर्वन् यो पूर्वं अधः पतन् दृष्टः तेन (सह) सुधीमता पुनः व्यवहारो न कर्तव्यो ।

(अर्थः) दुष्ट व्यवहार करते हुए जिसका अधःपतन पहले देखा गया हो ऐसे मनुष्य के साथ बुद्धिमान् (मनुष्य) को फिर से व्यवहार नहि करना चाहिए।

[मूल] महता तद्वचो वाच्यं शक्यते कर्तुमेव यत्।
नावर्षन् जलदो जातु दर्शयत्युत्तरोन्नतिम्॥२०३॥(३.९)

(अन्वयः) महता तद्वचो वाच्यं यत् कर्तुमेव शक्यते, अवर्षन् जलद उत्तरोन्नतिं न जातु दर्शयति।

(अर्थः) महान लोगों को वही वचन बोलने चाहिए जो पूरे हो सके। पानी न बरसाने वाला बादल कभी उत्तर उन्नति को नही दिखाता है।

[मूल] देशकालप्रभावानां तत्त्वं विज्ञाय सर्वदा।
योजनीयानि कार्याणि सर्वाण्यपि सुबुद्धिभिः[१]॥२०४॥(३.१०)

(अन्वयः) सुबुद्धिभिः सर्वदा देशकालप्रभावानां तत्त्वं विज्ञाय सर्वाण्यपि कार्याणि योजनीयानि।

---

१. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

(अर्थः) बुद्धिमानों के द्वारा हमेशा देशकाल के प्रभावों के तत्त्वों को जानकर सभी कार्यों की योजना करनी चाहिए।

[मूल] न दानेन विना कीर्तिर्न दानं कमलां विना।
न सा लक्ष्मीर्विना पुण्यं न पुण्यं हि दयां विना॥२०५॥(३.११)

(अन्वयः) दानेन विना न कीर्तिः, कमलां विना न दानम्, पुण्यं विना न सा लक्ष्मीः, दयां विना न हि पुण्यम्।

(अर्थः) दान के सिवाय कीर्ति, धन के सिवाय दान, पुण्य के सिवाय वह लक्ष्मी और दया के बिना पुण्य नहि होता।

[मूल] कुरूपस्याप्यशीलस्य धनिनो हीनजन्मतः।
गौरवं दृश्यते लोके तस्माद्धनमुपार्जयेत्॥२०६॥(३.१२)

(अन्वयः) कुरूपस्य अशीलस्य हीनजन्मनो धनिनोऽपि लोके गौरवं दृश्यते तस्माद्धनमुपार्जयेत्।

(अर्थः) कुरूप, असदाचारी, नीच कुल में जन्मे हुए धनवान् का लोक में गौरव दिखता है अतः धन प्राप्त करना चाहिए।

[मूल] निर्गुणोऽप्येष गुणवान्निष्कलङ्कः कलङ्क्यपि।
नीचोऽप्युच्चासने सर्वैः स्थाप्यते धनवान्नरः॥२०७॥(३.१३)

(अन्वयः) सर्वैः एषः धनवान्नरः निर्गुणोऽपि गुणवान्, कलङ्क्यपि निष्कलङ्कः, नीचोऽपि उच्चासने स्थाप्यते।

(अर्थः) सभी लोगों के द्वारा धनवान मनुष्य निर्गुण हो फिर भी गुणवान् कहा जाता है, कलंक से युक्त हो फिर भी निष्कलंक कहा जाता है और नीच हो फिर भी उच्च आसन पर बिठाया जाता है।

[मूल] गृहे भवति चेद् भूरि धनं स्वायत्तमर्जितम्।
न दीयते च सत्पात्रे पश्चात्तापाय तद्भवेत्॥२०८॥[१](३.१४)

(अन्वयः) गृहे स्वायत्तमर्जितं भूरि धनं भवति सत्पात्रे न दीयते चेद् तत् पश्चात्तापाय भवेत्।

(अर्थः) घर में अपनी महेनत से कमाया हुआ बहुत धन हो और यदि वह सत्पात्र में नहि दिया गया तो पश्चाताप के लिए होता है।

[मूल] श्रुत्वा सदुपदेशाँश्च पात्रे क्षेपो धनस्य न।
निक्षिप्य भूमौ पात्रेण स मूढैरन्यथा कृतः॥२०९॥(३.१५)

(अन्वयः) सदुपदेशान् च श्रुत्वा धनस्य पात्रे क्षेपो न (कृतः), मूढैः पात्रेण स भूमौ निक्षिप्य अन्यथा कृतः।

(अर्थः) सदुपदेश सुनकर(जिसने) धन का पात्र में दान नहि किया (उसने) पात्र के बदले भूमि में धन डालकर उसे विपरीत कर दिया।

---

१. घर नाहिं जइ भूरि घणो आपण न ऊपार्जिउ जइ सुपात्रनइ न दीजइ तव्य पच्छतावो होइ। इत्यधिकं को.२०००८।

[मूल] धरणीतलनिक्षिप्तधनेनान्ते सुखं यदि।
तदा वन्ध्यासुतोऽपि स्यात् सुखी खकुसुमार्चितः॥२१०॥(३.१६)

(अन्वयः) यदि धरणीतलनिक्षिप्तधनेन अन्ते सुखं स्यात्, तदा वन्ध्यासुतोऽपि, खकुसुमार्चितोऽपि सुखी स्यात्।

(अर्थः) यदि पृथ्वी के अंदर छिपाए हुए धन से अंत में सुख होता तो आकाश के पुष्प से पूजित बांझ का पुत्र भी सुखी होता।

[मूल] स्तावं स्तावं कदर्थित्वं प्रापितायार्थिने धनी।
ददाति दानं तेनासौ तत्पापान्नैव मुच्यते॥२११॥(३.१७)

(अन्वयः) धनी कदर्थित्वं स्तावं स्तावं प्रापिताय अर्थिने दानं ददाति तेनासौ तत्पापात् नैव मुच्यते।

(अर्थः) धनवान कुछ मांगने की इच्छा से आये हुए अर्थी की दुरवस्था को कोसते हुए दान देता है, उससे यह उस पाप से मुक्ति नही होता।

[मूल] प्रशंसार्थं हि दातारः कति नो सन्ति भूतले?।
परलोकहितार्थाय द्वित्राः सन्ति न सन्ति वा॥२१२॥(३.१८)

(अन्वयः) प्रशंसार्थं हि दातारः भूतले कति नो सन्ति?, परलोकहितार्थाय द्वित्राः सन्ति न सन्ति वा।

(अर्थः) प्रशंसा के लिए दान देने के लिए इस पृथ्वी पर कितने नहि है? अर्थात् बहुत है। लेकिन परलोक के हित के लिए दान देने वाले दो-तीन भी है या नहीं।

[मूल] प्रस्तावसदृशं दानं दत्वाऽर्थिभ्यः सभासु यः।
अनुतापकरः पश्चात्तद्धर्ममपि नाशयेत्॥२१३॥(३.१९)

(अन्वयः) यः अर्थिभ्यः प्रस्तावसदृशं दानं दत्त्वा, पश्चाद् सभासु अनुतापकरः (सः) धर्ममपि नाशयेत्।

(अर्थः) जो अर्थी को प्रस्ताव के समान दान देकर सभा में पश्चाताप करता है वह उस धर्म का भी नाश करता है।

[मूल] न येनाकारि विद्येयं जिह्वाग्राङ्गणनर्तकी।
सभायां स कथं ब्रूते वाक्यं वाचाम्पतिर्यथा॥२१४॥(३.२०)

(अन्वयः) येन जिह्वाग्राङ्गणनर्तकी इयं विद्या नाकारि, स सभायां वाक्यं कथं ब्रूते यथा वाचाम्पतिः ।

(अर्थः) जिसके द्वारा विद्या जिह्वा के अग्रभाग पर नर्तकी समान सिद्ध नहि किया वह सभा में कैसे बोलता है, वाणी का पति जैसे वाक्य (बोलता है)।

[मूल] कीर्तिं लक्ष्मीं धृतिं रूपमारोग्यं बुद्धिवैभवम्।
कल्पवल्लीव विद्येयं सन्तुष्टा किं न यच्छति?॥२१५॥(३.२१)

(अन्वयः) कल्पवल्लीव विद्येयं सन्तुष्टा कीर्तिं लक्ष्मीं धृतिं रुपम् आरोग्यं बुद्धिवैभवम् किं न यच्छति?

(अर्थः) विद्या कल्पवेली है। संतुष्ट विद्या कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, रुप, आरोग्य, बुद्धिवैभव क्या क्या नहि देती?

[मूल] कृपणः पूर्णवित्तश्चेद्विद्यावान् गर्वपर्वतः।
अहो चित्रं महद् दृष्टं पानीयादग्निरुत्थितः॥२१६॥(३.२२)

(अन्वयः) पूर्णवित्तः कृपणः विद्यावान् गर्वपर्वतश्च अहो महत् चित्रं दृष्टं पानीयादरुत्थितः।

(अर्थः) बहुत धनवान् है मगर कंजूस है, विद्या संपन्न है लेकिन गर्व से पर्वत के समान है, अहो! ये विचित्र आश्चर्य देखा गया जैसे कि पानी से आग ऊठी हो।

[मूल] अविज्ञातगृहे यानमज्ञातफलभक्षणम्।
अज्ञातौषधसेवा च न कार्या कुशलेप्सुभिः॥२१७॥(३.२३)

(अन्वयः) कुशलेप्सुभिः अविज्ञातगृहे यानम्, अज्ञातफलभक्षणम्, अज्ञातौषधसेवा च न कार्या।

(अर्थः) कुशलता की इच्छा करनेवाले पुरुषने अज्ञात घर में जाना, अज्ञात फल का सेवन, अज्ञात औषधि से सेवा नहीं करनी चाहिए।

[मूल] देशान्तरगतैः सद्भिर्व्यवसायहितेप्सुभिः।
शुल्कभीत्या कुमार्गेण न गन्तव्यं कदाचन[१]॥२१८॥(३.२४)

(अन्वयः) देशान्तरगतैः व्यवसायहितेप्सुभिः सद्भिः शुल्कभीत्या कुमार्गेण कदाचन न गन्तव्यम्।

(अर्थः) परदेश में गये हुए व्यवसाय के हित में इच्छा रखनेवाले सज्जनों के द्वारा कर के डर से कभी भी गलत रास्ते से नहि जाना चाहिए।

[मूल] शास्तारो बहवो यत्र यत्र राजा च बालकः।
तद्राष्ट्रं चतुरैस्त्याज्यं स्त्रीप्रधानमराजकम्[२]॥२१९॥(३.२५)

(अन्वयः) यत्र बहवः शास्तारः यत्र बालकः राजा च, स्त्रीप्रधानम् अराजकं चतुरैः तद् राष्ट्रं त्याज्यम्।

(अर्थः) जहाँ पर बहुत शासन कर्ता हो, जहाँ बालक राजा हो, जो स्त्रीप्रधान हो तथा अराजक हो बुद्धिमानों के द्वारा वह राष्ट्र त्यागना चाहिए।

[मूल] यस्य न ज्ञायते वित्तं कुलं धर्मः सुशीलता।
तेन मैत्री विवाहश्च न कार्यः सुखमिच्छता॥२२०॥(३.२६)

(अन्वयः) यस्य वित्तं, कुलं, धर्मः, सुशीलता न ज्ञायते, सुखमिच्छता तेन मैत्री विवाहश्च न कार्यः।

---

१. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

२. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

(अर्थः) जिसका धन, कुल, धर्म और सुशीलता नहीं मालूम होती है, सुख की इच्छा करने वाले पुरुष को उसके साथ मैत्री और विवाह नहीं करना चाहिए।

[मूल] समये व्यवसायस्तु कृतः स्याल्लाभदायकः।
पर्वतीर्थादिसंयोगे दत्तं बहुफलं यथा॥२२१॥ (३.२७)

(अन्वयः) समये कृतः व्यवसायः तु लाभदायकः स्यात्, पर्वतीर्थादिसंयोगे दत्तं यथा बहुफलम्।

(अर्थः) समय पर किया गया व्यवसाय लाभदायक होता है, तिथि और तीर्थादि के निमित्त में दिया गया दान जैसे बहुत फलदायक होता है।

[मूल] आपत्स्वप्यनृतं वाच्यं कातरैर्न कदाचन।
सत्येनैवापदं तीर्णा हरिश्चन्द्रादयो नृपाः॥२२२॥(३.२८)

(अन्वयः) कातरैः आपत्स्वप्यनृतं न कदाचन वाच्यम्, हरिश्चन्द्रादयो नृपाः सत्येनैवापदं तीर्णाः।

(अर्थः) कायर (मनुष्यों) के द्वारा कभी आपत्ति में भी असत्य भाषण नहीं करना चाहिए, हरिश्चन्द्रादि राजाओं ने सत्य से हि बाधाओं को पार किया।

[मूल] प्रहरेत् सर्वथा स्त्रीषु कदाचिन्नातिकोपतः।
विशेषाद्बालयुक्तासु सगर्भास्वातुरासु च[1]॥२२३॥(३.२९)

(अन्वयः) कदाचित् स्त्रीषु अतिकोपतः सर्वथा न प्रहरेत्, विशेषात् बालयुक्तासु, सगर्भासु, आतुरासु च।

(अर्थः) कभी भी स्त्री को अतिक्रोध से ताडना नहीं चाहिए विशेष रूप से बालसहित, गर्भवती तथा बीमार।

[मूल] वैरिणामपि भूपालपुरो मर्मप्रकाशनम्।
अयशस्करमेतद्धि न विधेयं मनीषिभिः॥२२४॥(३.३०)

(अन्वयः) मनीषिभिः भूपालपुरो वैरिणामपि मर्मप्रकाशनं न विधेयम्, अयशस्करं हि एतद्।

(अर्थः) विद्वानों के द्वारा राजा के सामने शत्रुओं का भी गुप्य बताना नहीं चाहिए, यह अयशकारी होता है।

[मूल] कार्यस्तु सततं सद्भिर्वेषो वित्तानुसारतः।
प्रभूतेऽपि धने धीरैर्न प्रभोरधिकः क्वचित्[2]॥२२५॥(३ ३१)

(अन्वयः) सद्भिः सततं वित्तानुसारतो वेषः कार्यः। धीरैः प्रभूतेऽपि धने न प्रभोरधिकः क्वचित्।

(अर्थः) सज्जनों के द्वारा हमेशा अपनी औकात के अनुसार वेष करना चाहिए, धीरों (पुरुषों) द्वारा अधिक धन होने पर भी राजा से अच्छा वेष कभी धारण नहि करना चाहिए।

---

१. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

२. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

[मूल] अविमृश्यात्मनः सारं राजमान्यैः समं कलिम्।
यः करोति विनाशाय स्वस्य बन्धुजनस्य च॥२२६॥ (३.३२)

(अन्वयः) यः आत्मनः सारं अविमृश्य राजमान्यैः समं कलिम् करोति (सः) स्वस्य बन्धुजनस्य विनाशाय च।

(अर्थः) जो आत्मबल का विचार न करते हुए राजमान्यों के साथ झगडा करता है वह अपने तथा बंधु के विनाश का कारण होता है।

[मूल] प्रभावमात्मनो यस्तु न वेत्ति धनगर्वतः।
स नरः सुधिया नैव प्रार्थनीयः कथञ्चन॥२२७॥(३ ३३)

(अन्वयः) यः धनगर्वतः आत्मनः प्रभावं न वेत्ति, सुधिया स नरः कथञ्चन नैव प्रार्थनीयः।

(अर्थः) जो धन के गर्व से आत्मा के प्रभाव को नहीं जानता हो, बुद्धिमान (पुरुष) के द्वारा वह मनुष्य किसी भी प्रकार से प्रार्थना करने योग्य नहीं है।

[मूल] मोघाऽपि प्रार्थना श्रेष्ठा गुणाधिकतरे नरे।
खरारोहणतः श्रेष्ठं पतनं तुरगादधः॥२२८॥(३.३४)

(अन्वयः) गुणाधिकतरे नरे मोघा अपि प्रार्थना श्रेष्ठा, खरारोहणतः तुरगाद् अधः पतनं श्रेष्ठम्।

(अर्थः) अधिक गुणवाले पुरुष में की हुई निष्फल प्रार्थना भी श्रेष्ठ होती है, गधे पर सवार होने की अपेक्षा घोडे से नीचे गिरना अच्छा।

[मूल] ऋणं कृत्वा व्ययं कुर्वन् पुरः सौख्यं न विन्दति।
निजवित्तानुमानेन व्यवसायात् सुखी भवेत्॥२२९॥(३.३५)

(अन्वयः) ऋणं कृत्वा व्ययं कुर्वन् पुरः सौख्यं न विन्दति, निजवित्तानुमानेन व्यवसायात् सुखी भवेत्।

(अर्थः) ऋण करके खर्च करते हुए आगे सुख नहि प्राप्त होता है, अपने धन का अनुमान करके व्यवसाय से सुखी होना चाहिए।

[मूल] व्याधिर्वैश्वानरो वादो व्यसनं वैरमेव च।
महानर्थकरा ह्येते वर्द्धिताः पञ्च विश्रुताः॥२३०॥(३.३६)

(अन्वयः) व्याधिः वैश्वानरः वादः व्यसनं वैरं एव च एते पञ्च वर्द्धिताः हि महानर्थकराः विश्रुताः ।

(अर्थः) रोग,अग्नि,वाद,व्यसन,और वैर ये पांच प्रसिद्ध बढते हुए महान् अनर्थ करने वाले होते हैं।

[मूल] कृतघ्नाः स्वामिहन्तारो ये च विश्वासघातकाः।
विनिन्दिता नराश्चैते महापातकिभिः समाः॥२३१॥(३.३७)

[मूल] असम्भाष्या भवन्त्येते दर्शनात् पापकारिणः।
व्यवहाराधिकारेषु कथमेषां हि योग्यता? ॥२३२॥ (३.३८) (युग्मम्)

---

१. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

(अन्वयः) ये कृतघ्नाः स्वामिहन्तारो विश्वासघातकाश्च एते नराः विनिन्दिता महापातकिभिः समाश्च । एते असम्भाष्या दर्शनात् पापकारिणः भवन्ति। एषां व्यवहाराधिकारेषु कथं हि योग्यता?

(अर्थः) जो कृतघ्न, स्वामी की हत्या करने वाले, विश्वास घातकी हो, ये मनुष्य विशेष रूप निंदा करने योग्य तथा महापापी के समान होते है। वे संभाषण करने अयोग्य, दर्शन मात्र से ही पाप को उत्पन्न करानेवाले होते हैं। क्या वास्तव में इनकी व्यवहार में योग्यता है?

[मूल] गुरुदेवाग्नितर्वङ्घ्रिवापीकूपादिसन्निधौ।
न स्वपेत् कमलाकाङ्क्षी विनग्नो न जलार्द्रपात्॥२३३॥(३.३९)

(अन्वयः) कमलाकाङ्क्षी गुरुदेवाग्नितर्वङ्घ्रिवापीकूपादिसन्निधौ विनग्नः न स्वपेत्।

(अर्थः) लक्ष्मी की इच्छा करने वाले ने गुरु, देव, अग्नि, वृक्ष मूल, बावडी, कुआ आदि के पास नहि सोना चाहिए। पूर्ण नग्न नहि सोना चाहिए, पानी से गिले पैर रखकर नहि सोना चाहिए।

[मूल] यः परस्याऽधमर्णोऽपि स्वोत्तमर्णत्ववाञ्छया।
दद्याद्वित्तं कुशीलेन बहुनाऽपि स मूर्खराट्॥२३४॥(३.४०)

(अन्वयः) यः परस्य अधमर्णः अपि स्वोत्तमर्णत्ववाञ्छया बहुना अपि कुशीलेन वित्तं दद्यात्, स मूर्खराट्।

(अर्थः) जो दूसरे का देनदार है फिर भी लेनदार होने की इच्छा से गलत व्यक्ति को अधिक पैसे देता है वह पागलों का राजा है।

[मूल] धीरः साहसिको मानी बलवानुद्यमप्रियः।
यः पराक्रमशीलश्च तस्माद्देवोऽपि शङ्कते॥२३५॥(३.४१)

(अन्वयः) यः धीरः साहसिको मानी बलवान् उद्यमप्रियः पराक्रमशीलः च तस्मात् देव अपि शङ्कते।

(अर्थः) जो धीर,साहसी,मानी,बलवान्,उद्योगप्रिय और पराक्रम से युक्त है उस से देव भी डरते हैं।

[मूल] अतिस्नेहो न कर्तव्यः क्रोधो वापि पदे पदे।
कलहं वर्द्धयेन्नैतत् प्रान्ते दुःखकरं त्रयम्॥२३६॥(३.४२)

(अन्वयः) पदे पदे अतिस्नेहः क्रोधो वापि न कर्तव्यः, कलहं न वर्द्धयेत्, प्रान्ते एतत्त्रयं दुःखकरम्।

(अर्थः) पग-पग पर अधिक स्नेह नही करना चाहिए, क्रोध नही करना चाहिए, कलह को बढावा नही देना चाहिए । ये तीन परिणाम में दुःखकर होते हैं।

[मूल] विद्वद्गोष्ठ्या सरसया सङ्गीतैश्च सुभाषितैः।
मधुरैर्वल्लभालापैर्भाग्यवान् गमयत्यहः॥२३७॥(३.४३)

(अन्वयः) भाग्यवान् सरसया विद्वद्गोष्ठ्या, सङ्गीतैश्च सुभाषितैः मधुरैर्वल्लभालापैः अहः गमयति।

(अर्थः) भाग्यवान् (श्रेष्ठ पुरुषों) का दिन रसिक विद्वदगोष्ठी से, सङ्गीत से, सुभाषितों से, अच्छी मधुर बातों से व्यतीत होता है।

[मूल] द्युतादिव्यसनेनैव निन्दया निद्रया तथा।
नीचैः समं सदालापैः पापीयान् गमयत्यहः॥२३८॥ (३.४४)

(अन्वयः) तथा पापीयान् द्युतादिव्यसेन निद्रया निन्दयैव नीचैः समं सदालापैरहो गमयति।

(अर्थः) नीच (पुरुषों का) जुए के व्यसन से, निद्रा में, निंदा से तथा पापी लोगों के साथ सदा बड-बड करने में ही दिन व्यतीत होता है।

[मूल] भ्रातृव्यं भ्रातरं पत्न्याः स्वस्रीयं(स्त्रियं) च स्वसुः पतिम्।
बन्दिनं देवलं त्यक्त्वा व्यवहारं समाचरेत्[१]॥२३९॥(३.४५)

(अन्वयः) भ्रातृव्यम्, पत्न्याः भ्रातरम्, स्वस्त्रियम् च, स्वसुः पतिम्, बन्दिनं देवलं त्यक्त्वा व्यवहारं समाचरेत्।

(अर्थः) भतीजा, पत्नी का भाई, बहन का पुत्र(खुद की स्त्री), बहन का पति, बंधन (कारावास) में पडे ऐसे देनदार का त्याग करके व्यवहार अच्छी तरह से करना चाहिए।

[मूल] नात्यन्तं विश्वसेत्स्त्रीषु नरः पुण्यवतीष्वपि।
प्रायो मूढस्वभावास्ताः स्त्रियः स्युः पापबुद्धयः॥२४०॥(३.४६)

(अन्वयः) नरः पुण्यवतीष्वपि स्त्रीषु नात्यन्तं विश्वसेत्, मूढस्वभावास्ताः स्त्रियः प्रायः पापबुद्धयः स्युः।

(अर्थः) मनुष्य को पुण्यवती होने पर भी स्त्रियों पर अति विश्वास नही करना चाहिए, मूर्ख स्वभाववाली वे स्त्रियाँ प्रायः पापबुद्धिवाली होती हैं।

[मूल] विरक्तां वनितां मूढां विश्वसेत्काममोहितः।
सोऽचिरान्नाशमायाति यथा राजा विदूरथः॥२४१॥(३.४७)

(अन्वयः) यः काममोहितः विरक्तां वनितां मूढां विश्वसेत् सोऽचिरान्नाशमायाति यथा विदूरथः राजा।

(अर्थः) जो कामाधीन पुरुष रागरहित मूढ स्त्री का विश्वास करता है वह विदूरथ राजा की तरह शीघ्र ही नष्ट होता है।

[मूल] भर्तृभक्तिं परित्यज्य व्रततीर्थादिशीलनम्।
प्रोषिते चातुरे पत्यौ सादरत्वमलङ्कृतौ॥२४२॥(३.४८)

[मूल] नित्यं परगृहे यानं प्रासादे जागरोत्सवे।
मातृगेहे सभायां च न योग्यं हि कुलस्त्रियः॥२४३॥(३.४९)

(अन्वयः) भर्तृभक्तिं परित्यज्य व्रततीर्थादिशीलनम्, प्रोषिते चातुरे पत्यौ अलङ्कृतौ सादरत्वम्, परगृहे प्रासादे जागरोत्सवे मातृगेहे सभायां नित्यं यानं कुलस्त्रियो न हि योग्यम्।

---

१. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

(अर्थः) पति की भक्ति छोडकर व्रत करना, तीर्थयात्रा पर जाना,पति परदेश हो या बिमार हो फिर भी शरीरसज्जा में लीन रहना, दूसरे के घर महल में, जागरण उत्सव में, माता के घर, सभा में हमेशा जाना कुलवती स्त्रियों के लिए योग्य नहीं हैं।

[मूल] अश्लीलामितवक्तृत्वमशुचित्वं कुशीलता।
नित्यं कलहकारित्वं स्त्रियो दौर्भाग्यकारणम्[१]॥२४४॥(३.५०)

(अन्वयः) अश्लीलामितवक्तृत्वमशुचित्वं कुशीलता नित्यं कलहकारित्वं स्त्रियो दौर्भाग्यकारणम्।

(अर्थः) अश्लील और अधिक भाषण, अशुद्धता, कुशीलता, सतत कलह करना ये स्त्रियों के दुर्भाग्य के कारण होते हैं।

[मूल] सीतेव प्रियविप्रियं न कुरुते हंसीव पक्षद्वयम्,
शुद्धं व्यातनुते पृथेव सततं या पुत्ररत्नप्रसूः।
नित्यं सर्वकुटुम्बभारवहने सर्वंसहेव क्षमा,
कान्ता मन्दिरमण्डनं सुकृतिनः सा देहिनीवेन्दिरा॥२४५॥(३.५१) (शार्दूलविक्रीडितम्)

(अन्वयः) (या) सीतेव प्रियविप्रियं न कुरुते, हंसीव पक्षद्वयम् शुद्धं व्यातनुते, पृथेव सततं या पुत्ररत्नप्रसूः, नित्यं सर्वकुटुम्बभारवहने सर्वंसहेव क्षमा सा कान्ता सुकृतिनः मन्दिरमण्डनं देहिनी इन्दिरा।

(अर्थः) जो सीता की तरह कभी पति का विरोध नहि करती, हंसी की तरह पितृपक्ष और श्वसुरपक्ष की शुद्धि करती है,पृथ्वी की तरह निरंतर पुत्ररत्नों को जन्म देती है,धरती की तरह समूचे कुटुंब का भार वहन करने में समर्थ है ऐसी स्त्री पुण्यवंत के घर की साक्षात् लक्ष्मी है।

[मूल] यस्य स्त्रीरत्नभोगोऽस्ति स निःस्वोऽपि महीपतिः।
सुभोज्यं वनितारत्नं राज्यसारं विदुर्बुधाः॥२४६॥(३.५२)

(अन्वयः) यस्य स्त्रीरत्नभोगः अस्ति सः निःस्वः अपि महीपतिः। सुभोज्यं वनितारत्नं राज्यसारं बुधाः विदुः।

(अर्थः) विद्वज्जन, जिसको स्त्री रूपी रत्न का भोग(प्राप्त) है, का धन न होते हुए भी पृथ्वीपति समझते हैं, अच्छे उपभोग योग्य स्त्रीरत्न को (ही) राज्य का सार समझते हैं।

[मूल] श्रुतं दृष्टं स्मृतं चापि मनः प्रह्लाददायकम्।
त्रिवर्गफलदं नान्यद्रत्नं स्त्रीभ्यो हि दृश्यते॥२४७॥(३.५३)

(अन्वयः) श्रुतं दृष्टं स्मृतं चापि मनः प्रह्लाददायकं त्रिवर्गफलदं स्त्रीभ्यो नान्यद्रत्नं हि दृश्यते।

(अर्थः) सुना गया, देखा गया, स्मरण किया गया मन को आनन्दित करनेवाला, तीनों लोकों को फल देने वाला ऐसा स्त्री से अन्य रत्न नहीं दिखता है।

---

१. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

[मूल] **व्यापारकोटिभारेण श्रान्तानां गृहमेधिनाम्।**
साम्प्रतं दृश्यते किञ्चिद्वल्लभालोकने सुखम्॥२४८॥(३.५४)

(अन्वयः) व्यापरकोटिभारेण श्रान्तानां गृहमेधिनां किञ्चित् वल्लभालोकने साम्प्रतं सुखं दृश्यते।

(अर्थः) कोट्यावधी व्यापार के भार से थके हुए गृहस्थी को थोडे से पत्नी के अवलोकन से तत्कालिक सुख दिखता है।

[मूल] **पृथ्वीलाभे पुरं सारं पुरे गेहो गृहे तथा।**
एकदेशश्च तत्रापि शय्या च शयनेऽङ्गना[१]॥२४९॥(३.५५)

(अन्वयः) पृथ्वीलाभे पुरं सारम्, पुरे गेहः तथा गृहे एकदेशः शय्या च तत्र अपि शयनेऽङ्गना च।

(अर्थः) पृथ्वी के लाभ में नगर सार है, नगर में घर, घर में एकदेश, एकदेश में शय्या और वहां भी पत्नी सार है।

[मूल] **चञ्चच्चन्द्रमरीचिभिर्धवलिते प्रोत्तुङ्गसौधस्थले,**
जातिचम्पकमल्लिकापरिमलोद्भ्रान्तद्विरे-फाकुले।
श्रीमच्चन्दनशैलसम्भवमरुत्संवीज्यमाने लसत्-
पर्यङ्के सुकृतीह कोऽपि रमते श्यामासमा-लिङ्गितः॥२५०॥(३.५६) (शार्दूलविक्रीडितम्)

(अन्वयः) इह चञ्चच्चन्द्रमरीचिभिर्धवलिते, प्रोत्तुङ्गसौधस्थले जातिचम्पकमल्लिकापरिमलोद्भ्रान्तद्विरेफाकुले श्रीमच्चन्दनशैलसम्भवमरुत्संवीज्यमाने लसत्पर्यङ्के श्यामासमालिङ्गितः कोऽपि सुकृती रमते ।

(अर्थः) चंद्रमा की चांदनी से सफेद ऊंचे महल में, जहां जाइ, चंपा, मल्लिका जैसे फूलों की सुगंध से खींचकर भंवरें गुंज रहे है, जहां चंदनशैल से ऊठी (चंदन सी शीतल) हुइ हवा चल रही है, ऐसे पलंग पर पत्नी के साथ आलिंगन बद्ध होकर सोनेवाला पुरुष पुण्यशाली है।

अथ वासः।

[मूल] **जिनपृष्ठे हरेर्वामभागे दृष्टौ पिनाकिनः।**
ब्रह्मणो दक्षिणाङ्गे च न गेहं कारयेद् बुधः॥२५१॥(३.५७)

(अन्वयः) जिनपृष्ठे, हरेर्वामभागे, पिनाकिनो दृष्टौ, ब्रह्मणो दक्षिणाङ्गे बुधः च गेहं न कारयेत्।

(अर्थः) जिनमंदिर के पीछे, विष्णुमंदिर की बायीं ओर, शंकरमंदिर के सामने, ब्रह्मामंदिर के दायीं ओर विद्वान् को घर नहीं बनाना चाहिए।

[मूल] **समीपे राजगेहस्य हिंस्रकारुकसन्निधौ।**
कुप्रातिवेश्मके स्थाने श्मशाने च न संवसेत्॥२५२॥(३.५८)

---

१. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

(अन्वयः) राजगेहस्य समीपे, हिंस्रकारुकसन्निधौ, कुप्रातिवेश्मके स्थाने श्मशाने च न संवसेत्।

(अर्थः) राजा के घर के पास, हिंसक के पास, नौकर के पास, खराब पडोसी के पास और स्मशान भूमि में नहि रहना चाहिए।

[मूल] खनित्वा करमात्रं हि भुवं तेनैव पूरयेत्।
यद्यूनं तदनिष्टं स्यादधिकं तच्छुभं मतम्॥२५३॥(३.५९)

(अन्वयः) करमात्रं हि भुवं खनित्वा तेनैव पूरयेत् यद्यूनं तदनिष्टं स्यात् अधिकं तच्छुभं मतम्।

(अर्थः) केवल (एक) हाथ प्रमाण भूमि को खोदकर उससे हि (उस मिट्टी से) भरो, भरने के बाद मिट्टी कम पड गई तो अनिष्ट मानो, और भरकर कुछ बाकी रही तो शुभ मानना।

[मूल] मृदुध्रुवगुरुस्वातिहस्तवासववारुणैः।
वास्तुनः सन्निवेशः स्यात् तत्प्रवेशः करोज्झितैः॥२५४॥(३.६०)

(अन्वयः) मृदुध्रुवगुरुस्वातिहस्तवासववारुणैः वास्तुनः सन्निवेशः स्यात्। करोज्झितैः तत्प्रवेशः (स्यात्)।

(अर्थः) मृदुसंज्ञक नक्षत्र,ध्रुवसंज्ञक नक्षत्र,पुष्य नक्षत्र, स्वाति नक्षत्र,हस्त नक्षत्र,धनिष्ठा नक्षत्र,शतभिषा नक्षत्र इन नक्षत्रों में वास्तु का संनिवेश होता है। इन नक्षत्रों के चरण को छोडकर प्रवेश होता है।

[मूल] ध्वजो धूमस्तथा सिंहः श्वा वृषश्च खरो गजः।
काकश्चेति क्रमेणोक्तं बुधैरायाष्टकं गृहे॥२५५॥[१](३.६१)

(अन्वयः) बुधैः ध्वजः धूमः तथा सिंहः श्वा वृषश्च खरो गजः काकश्चेति क्रमेण आयाष्टकमुक्तम्।

(अर्थः) विद्वानों के द्वारा क्रम से बताये हुए ये आठ प्रकार के आय (साधन) हैं। ध्वज, धुआँ, सिंह, कुत्ता, बैल, गधा,हाथी, कौआ आदि।

[मूल] आयामविस्तराघाते शेषमायो गजोद्धृते।
विषमायाः शुभाः प्रोक्ताः स्वदिक्स्थाः सर्वगो ध्वजः॥२५६॥(३.६२)

(अन्वयः) गजोद्धृते आयामविस्तराघाते शेषमायो । स्वदिक्स्थाः विषमायाः शुभाः प्रोक्ताः, ध्वजः सर्वगः।

(अर्थः) वास्तु की लंबाई और चौडाई का गुणाकार करके (क्षेत्रफल नीकाल कर) आठ से भाग देने पर जो शेष संख्या बचती है वह आय है। विषम संख्या वाले (एक,तीन,पांच इ.) आय अपनी अपनी दिशा में शुभ है। ध्वज आय सर्व दिशा में शुभ है।

[मूल] तस्मिन् क्षेत्रफलेऽष्टघ्ने भैर्भक्ते शेषऋक्षकम्।
भेऽष्टभक्ते व्ययोऽपि स्याद् बह्वायं सदृहं व्ययात्[२]॥२५७॥(३.६३)

---

१. आठ नाम आयना जाणिवा। इति टीप्पणिः को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

२. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

(अन्वयः) तस्मिन् अष्टघ्ने क्षेत्रफले भैर्भक्ते शेषऋक्षकम् भेऽष्टभक्ते व्ययोऽपि स्याद्। व्ययाद् बह्वायं सदृहम्।

(अर्थः) उस क्षेत्रफल का आठ से गुणाकार कर के सत्ताइस से भाग देने पर जो शेष रहती है वह वास्तु का नक्षत्र है। क्षेत्र के नक्षत्र को आठ से भाग देने पर जो शेष रहती है वह वास्तु का व्यय है। व्यय से अधिक आय वाला घर शुभ होता है।

[मूल] व्ययय़ुक्ते फले तस्मिन् ध्रुवाद्यक्षरमिश्रिते।
त्रिभक्तेंऽशाश्च शेषाङ्कैरिन्द्रान्तकनराधिपाः॥२५८॥(३.६४)

(अन्वयः) तस्मिन् व्ययय़ुक्ते फले ध्रुवाद्यक्षरमिश्रिते त्रिभक्ते शेषाङ्कैरिन्द्रान्तकनराधिपाः अंशाश्च (भवन्ति)।

(अर्थः) उस क्षेत्रफल, व्यय और ध्रुव आदि घर के नामाक्षर को जोडकर तीन से भाग देने पर जो शेष रहती है वह वास्तु का अंशक है। (क्षेत्रफल+व्यय+ध्रुव आदि घर के नामाक्षर÷ ३= अंशक) ईंद्र,यम और राजा ये अंशक के नाम है।[१]

[मूल] ध्रुवं धान्यं जयं नन्दं खरं कान्तं मनोहरम्।
सुमुखं दुर्मुखं क्रूरं विपक्षं धनदं क्षयम्॥२५९॥(३.६५)

[मूल] आक्रन्दं विपुलं चैव षोडशं विजयाह्वयम्।
गृहनामानि जायन्ते मन्दिरालिन्दभेदतः॥२६०॥(३.६६)युग्मम्॥[२]

(अन्वयः) मन्दिरालिन्दभेदतः ध्रुवं धान्यं जयं नन्दं खरं कान्तं मनोहरं सुमुखं दुर्मुखं क्रूरं विपक्षं धनदं क्षयम् आक्रन्दं विपुलं विजयाह्वयम् चैव षोडशं गृहनामानि जायन्ते।

(अर्थः) घर के अलंद(=घर के सामने रही खुली जगह) के भेद से ध्रुव, धान्य, जय, नंद, खर, कांत, मनोहर, सुमुख, दुर्मुख, क्रूर, विपक्ष, धनद, क्षय, आक्रन्द, विपुल और विजय सोलह घर के नाम निर्माण होते हैं।

[मूल] लग्ना१स्ता७रि६त्रि३तुर्येषु४ जीव१ज्ञा२र्का३ऽर्कि४भार्गवाः५।
स्थिता यद्गेहनिर्माणे शताब्दायुर्गृहं भवेत्॥२६१॥[३]**(३.६७)**

(अन्वयः) यद् गेहनिर्माणे लग्नास्तारित्रितुर्येषु जीवज्ञार्काऽऽर्किभार्गवाः स्थिताः तद् गृहं शताब्दायुः भवेत्।

(अर्थः) जिस गृह के निर्माण समय में कुंडली के लग्न स्थान में गुरु हो, सातवें स्थान में बुध हो, छठवे स्थान में सूर्य हो,तीसरे स्थान में शनि हो तथा चौथे स्थान में शुक्र हो वह घर सौ साल तक टिकता है।

---

१. मूलराशौ व्ययं क्षिप्त्वा गृहनामाक्षराणि च। त्रिभिरेव हरेद् भागं यच्छेषमंशकः स्मृतः॥
इन्द्रो यमश्च राजा वै चांशकाः त्रयमेव च। (शिल्परत्नाकर १-११९-१२०)

२. ध्रुवं धान्यं जयं नन्दं खरं कान्तं मनोहरम्। सुमुखं दुर्मुखं क्रूरं विपक्षं धनदं क्षयम्॥६४॥
आक्रन्दं विपुलं चैव षोडशं विजयाह्वयम्। कथितालिन्दभेदेन ध्रुवादि नाम षोडष॥६५॥ युग्मम्॥ (शिल्परत्नाकर १- ११७-११८)

३. लग्ने गुरौ रवौ षष्ठे द्यूने ज्ञे भार्गवे सुखेऽमन्द्रे त्रिगे कृतं तिष्ठेन्मन्दिरं शरदां शतम्॥ (शिल्परत्नाकर १४-१५५)

[मूल] शुक्रः स्वोच्चगतो जीवो लग्नगोऽम्बुगतोऽथवा।
स्वोच्चगो लाभगो वार्किः प्रारम्भे तद्गृहं स्थिरम्॥२६२॥[१](३.६८)

(अन्वयः) प्रारम्भे शुक्रः स्वोच्चगतः, जीवो लग्नगः अथवा अम्बुगतः, स्वोच्चगः लाभगो वाऽऽर्किः तद्गृहं स्थिरम्।

(अर्थः) जिस गृह के प्रारम्भ में शुक्रः अपनी उच्च राशि (मीन) में हो,गुरु लग्न में अथवा चौथे स्थान में हो, शनि अपनी उच्च राशि (तुला) में हो अथवा ग्यारहवे स्थान में हो वह घर स्थिर होता है।

[मूल] गुरौ केन्द्रेऽथवा शुक्रे क्रूरैः षट्त्र्यायगैस्तथा।
शुद्धैः केन्द्रव्ययच्छिद्रैः स्थिरलग्ने गृहं विशेत्॥२६३॥[२](३.६९)

(अन्वयः) गुरौ अथवा शुक्रे केन्द्रे तथा क्रूरैः षट्त्र्यायगैः शुद्धैः केन्द्रव्ययच्छिद्रैः स्थिरलग्ने गृहं विशेत्।

(अर्थः) गुरु और शुक्र केंद्र में हो,क्रूर ग्रह छठवें, तीसरे या ग्यारहवे स्थान में हो, केंद्र;(१-४-७-१०) बारहवां और आठवां स्थान शुद्ध हो तब स्थिर लग्न में गृहप्रवेश करना चाहिए।

इति वास्तुलक्षणम्।

[मूल] जगज्जनमनोहरं विपुलसारसद्मश्रियं, सदैव सफलोद्यमं सकलसत्कलाकोविदम्।
करोति विनयास्पदं वरविवेकता[३]लङ्कृतम्, नरं नृपतिवल्लभं व्यवहृतिः समासेविता॥२६४॥
(३.७०) (पृथ्वी)

(अन्वयः) समासेविता व्यवहृतिः नरं जगज्जनमनोहरम् विपुलसारसद्मश्रियम्, सदैव सफलोद्यमं सकलसत्कलाकोविदम्, विनयास्पदम्, वरविवेकतालङ्कृतम्, नृपतिवल्लभं करोति।

(अर्थः) व्यवहार का सेवन व्यक्ति को जनप्रिय करता है,विपुल और सारभूत लक्ष्मी का स्थान बनाता है, हमेशा सफल बनाता है, सर्व कला में कुशल बनाता है, सन्माननीय बनाता है, विवेकी बनाता है और राजवल्लभ बनाता है।

[मूल] गौरा भाति च यस्य गौरवगुणैर्विश्वम्भरेवाऽपरा,
रत्नालङ्कृतिसोज्ज्वलाखिलपरस्त्रीसोदरस्य प्रिया।
शृङ्गारादिरसेन कान्तसुभगा सङ्ग्रामसिंहस्य तत्-
प्रोक्ते बुद्धिसुधाम्बुधौ व्यवहृतेरुर्मिस्तृतीयोऽभवत्[४]॥२६५॥(३.७१)

---

१. शुक्रे स्वोच्चे तनौ वापि जीवे पातालगेऽथवा। लाभगे वा शनौ स्वोच्चे सम्पद्युक्तं गृहं स्थिरम्॥ (शिल्परत्नाकर १४-१५९)

२. गुरु शुक्र ए केंद्र गत होइ, छठां क्रूर होइ, तीज्य ग्यारमा सौम्य स्थिर लग्नि घरनो निवास कीजइ। इति अधिकं दृश्यते - को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

शुभे केन्द्रत्रिकोणायद्विगैरायत्रिषष्ठगैः। पापैः शुद्धेऽष्टमे तुर्ये विजनुर्भाष्टमेऽङ्गके॥(शिल्परत्नाकर १४-१६६) (

३. विवेचना इति भां२९६ , ओ २८७८

४. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

(अन्वयः) यस्य च अखिलपरस्त्रीसोदरस्य रत्नालङ्कृतिसोज्ज्वला गौरवगुणैः अपरा विश्वम्भरा इव शृङ्गारादिरसेन कान्तसुभगा प्रिया गौरा भाति (तस्य) सङ्ग्रामसिंहस्य प्रोक्ते बुद्धिसुधाम्बुधौ व्यवहृतेः तृतीयः उर्मिः अभवत्।

(अर्थः) परस्त्री के भाइ समान जिसकी रत्न और अलङ्कार से उज्ज्वल, गौरवगुण से दूसरी पृथ्वी के समान, शृङ्गारादि रसों से कान्त और सुभग गौरा नामक पत्नी है उस सङ्ग्रामसिंह विरचित बुद्धिसागर ग्रंथ में व्यवहार नामक तीसरा तरंग पूर्ण हुआ॥

॥इति श्रीसङ्ग्रामसिंहविरचिते बुद्धिसागरे व्यवहारतरङ्गस्तृतीयः॥

॥चतुर्थः प्रकीर्णकतरङ्गः॥

[मूल] **जिनाधिपं सर्वविदं प्रणम्य सङ्ग्रामसिंहेन परोपकृत्यै।**
प्रारभ्यते सम्प्रति बुद्धिसिन्धौ प्रकीर्णकस्तुर्यतरङ्गराजः॥२६६॥(४.१) (उपजातिः)

(अन्वयः) सर्वविदं जिनाधिपं प्रणम्य सङ्ग्रामसिंहेन सम्प्रति परोपकृत्यै बुद्धिसिन्धौ तुर्यतरङ्गराजः प्रकीर्णकः प्रारभ्यते।

(अर्थः) सर्वज्ञ जिनश्रेष्ठ को नस्मकार करके संग्रामसिंह के द्वारा अब परोपकार हेतु बुद्धिसागर में चार तरंगों का राजा ऐसा प्रकीर्णक तरङ्ग प्रारंभ किया जाता है।

[मूल] **सद्वैद्यकार्थामृतसङ्गशीतः सामुद्रिकाद्यर्थवनाधिवासी।**
ज्योतिष्कलाविद्रुमकुञ्जखञ्जः सुखाय वस्तुर्यतरङ्गवायुः॥२६७॥(४.२) (उपजातिः)

(अन्वयः) सद्वैद्यकार्थामृतसङ्गशीतः, सामुद्रिकाद्यर्थवनाधिवासी, ज्योतिष्कलाविद्रुमकुञ्जखञ्जः (एषः) तुर्यतरङ्गराजः वः सुखाय(भवतु)

(अर्थः) वैद्यकशास्त्र के अर्थ रूप अमृत के संग से शीतल, सामुद्रिक आदि शास्त्र के अर्थ रूप वन में रहने वाला, ज्योतिष शास्त्र के अर्थ रूप वृक्ष के लतामंडप में रुका हुआ यह चौथा तरंग राज आपके सुख के लिए हो।

[मूल] **दयामूलेन धर्मेण विना न स्यात्परं सुखम्।**
सुखस्थानं शरीरं तद्रक्षणीयं प्रयत्नतः॥२६८॥(४.३)

(अन्वयः) दयामूलेन धर्मेण विना परं सुखं न स्यात्, सुखस्थानं शरीरं तत् प्रयत्नतः रक्षणीयम्।

(अर्थः) दया नामक मूल धर्म के बिना कोई सुख नही है, सुख का आश्रय शरीर है अतः उसकी प्रयत्न से रक्षा करनी चाहिए।

[मूल] **स प्राप्नोत्यपमृत्युं यो युक्त्यात्मानं न रक्षयेत्।**
दीपो निर्वाणतां याति स्नेहपूर्णोऽपि वायुना॥२६९॥(४.४)

(अन्वयः) यः युक्त्या आत्मानं न रक्षयेत् सः अपमृत्युं प्राप्नोति, स्नेहपूर्णोऽपि दीपो वायुना निर्वाणतां याति।

(अर्थः) जो युक्ति से अपने(शरीर की) रक्षा नहीं करता है वह अकालमृत्यु को प्राप्त करता है जैसे तेल से पूर्ण दिया वायु के द्वारा बुझ जाता है।

[मूल] **शरीरं न विना ज्ञानमात्मनः सुखदुःखयोः।**
सङ्क्षेपात् कथ्यते तावत्तदुत्पत्तिर्मयाधुना॥२७०॥(४.५)

(अन्वयः) शरीरं विना आत्मनः सुखदुःखयोः ज्ञानं न (भवति), तावत् तदुत्पत्तिर्मया अधुना सङ्क्षेपात् कथ्यते।

(अर्थः) शरीर के बिना आत्मा को सुख-दुःख का अनुभव नही होता, इसलिए उसकी उत्पत्ति के बारे में अब मैं संक्षेप से कहूँगा।

[मूल] कर्मणा प्रेरितो जीवः शुक्रशोणितयोगतः।
ऋतौ गर्भाशये प्राप्तो गर्भः सम्पद्यते तदा॥२७१॥(४.६)

(अन्वयः) कर्मणा प्रेरितः ऋतौ शुक्रशोणितयोगतः जीवः यदा गर्भाशये प्राप्तः तदा गर्भः सम्पद्यते।

(अर्थः) कर्म की प्रेरणा से तथा ऋतुकाल में शुक्र और शोणित के योग से जीव जब गर्भाशय में प्राप्त होता है तब गर्भ बनता है।

[मूल] तत्क्षणे द्रवरूपः स्यात् सप्ताहात् कललं भवेत्।
पक्षात्तद्बुद्बुदाकारं मासेन कठिनं भवेत्॥२७२॥(४.७)

(अन्वयः) तत् क्षणे (गर्भः) द्रवरूपः स्यात् सप्ताहात् कललं भवेत्, पक्षात् तद् बुद्बुदाकारं मासेन कठिनं भवेत्।

(अर्थः) उसी क्षण वह गर्भ द्रवरूप होता है, एक सप्ताह में भ्रूण होता है, पंद्रह दिन में बुद्बुदाकार होता है, एक मास में कठिन बनता है।

[मूल] पेशी मासे द्वितीये स्यादुत्पद्यन्ते ततः परम्।
शिरो भुजो च पादौ च तृतीयेऽङ्गानि पञ्च वै॥२७३॥(४.८)

(अन्वयः) द्वितीये मासे पेशी स्याद्, ततः परं तृतीये शिरो भुजौ पादौ च वै पञ्च अङ्गानि उत्पद्यन्ते।

(अर्थः) दूसरे माह में पेशी उत्पन्न होती हैं, उसके बाद सिर, दो भुजा, दो पैर ये पाँच अङ्ग उत्पन्न होते हैं।

[मूल] सर्वाङ्गव्यक्तता तुर्ये मासि सञ्जायते ततः।
पञ्चमे मासि चैतन्यं षष्ठे रोमादिकं तथा॥२७४॥(४.९)

(अन्वयः) तुर्ये मासि सर्वाङ्गव्यक्तता सञ्जायते, ततः पञ्चमे मासि चैतन्यं तथा षष्ठे रोमादिकम् (सञ्जायते)।

(अर्थः) चौथे माह में सभी अंगों की व्यक्तता होती हैं, पांचवें माह में चैतन्य तथा छठे मास में रोमादि उत्पन्न होते हैं।

[मूल] सर्वाङ्गपरिपूर्णोऽयं सप्तमे मासि वर्धते।
संवस[१]त्यष्टमे मासि त्वस्मिन्नोजस्तथाविधे॥२७५॥(४.१०)

(अन्वयः) सर्वाङ्गपरिपूर्णोऽयं सप्तमे मासि वर्धते, अष्टमे मासि तथाविधे अस्मिन्नोजस्तु सञ्चरति।

(अर्थः) सभी अंगों से परिपूर्ण यह(गर्भ) सातवे माह मे बढता है, आंठवें माह में थोडी-थोडी हलचल करता है तथा इसी माह में उस में ओज का संचार होता है।

[मूल] चापल्यादोजसस्तस्मिन् जातः पुत्रो न जीवति।
नवमे मासि गर्भोऽयं प्रसूत्यै स्यादधोमुखः॥२७६॥(४.११)

---

१. सञ्चर मु.

(अन्वयः) तस्मिन् चापल्यादोजसः जातः पुत्रः न जीवति, अयं गर्भः नवमे मासे प्रसूत्यै अधोमुखः स्यात्।

(अर्थः) उस में (मास में) ओज की चपलता होने पर उत्पन्न हुआ पुत्र जीवित नहीं रहता, यह गर्भ नौवें मास में प्रसूति के लिए अधोमुख होता है।

[मूल] अनुभूय परं योनिकष्टं जन्म ततः परम्।
प्रसूतिसमये जातः पुत्रः सर्वाङ्गशोभितः[1]॥२७७॥(४.१२)

(अन्वयः) ततः परं प्रसूतिसमये परं योनिकष्टम् अनुभूय, सर्वाङ्गशोभितः पुत्रः जातः।

(अर्थः) उसके पश्चात् प्रसव काल के समय कष्टप्रद ऐसे योनि के कष्ट का अनुभव करके सभी अंगों से शोभित पुत्र उत्पन्न हुआ।

[मूल] शुक्रशोणितयोः साम्ये गर्भे षण्ढः प्रजायते।
अधीरः सत्त्वहीनश्च धर्मकार्यविवर्जितः॥२७८॥(४.१३)

(अन्वयः) शुक्रशोणितयोः साम्ये गर्भे अधीरः सत्त्वहीनश्च धर्मकार्यविवर्जितः षण्ढः प्रजायते।

(अर्थः) वीर्य और रज की समानता होने पर गर्भ में अधीर, सत्त्व से हीन, धर्मकार्य से रहित ऐसा नपुंसक (पुत्र) उत्पन्न होता है।

[मूल] वीर्येऽधिके भवेत्पुत्रः कन्या रक्तेऽधिके तथा।
तस्मात् सेव्यं प्रयत्नेन वीर्यवृद्धिकरौषधम्॥२७९॥(४.१४)

(अन्वयः) वीर्येऽधिके भवेत्पुत्रः रक्तेऽधिके तथा कन्या, तस्मात् प्रयत्नेन वीर्यवृद्धिकरौषधं सेव्यम्।

(अर्थः) वीर्य के अधिक होने पर पुत्र होता है, उसी प्रकार रज की मात्रा अधिक होने पर पुत्री होती है, इसीलिए प्रयत्नपूर्वक वीर्य की वृद्धि करनेवाले औषधों का सेवन करना चाहिए।

इति शरीरम्।

वैद्यकसारः।

[मूल] व्याधेः कर्मविपाकोक्तयुक्त्या नाशः क्वचिद्भवेत्।
क्वचिद्भैषज्ययोगाच्च क्वचिद् दुःखानुभूतितः॥२८०॥(४.१५)

(अन्वयः) व्याधेः नाशः क्वचिद् कर्मविपाकोक्तयुक्त्या, क्वचिद् भैषज्ययोगात्, क्वचित् दुःखानुभूतितश्च भवेत्।

(अर्थः) व्याधि का नाश कभी कर्म विपाक के युक्ति से, कभी दवाईयों के प्रयोग से, कभी दुःख की अनुभूति से होता है।

[मूल] तस्माच्छरीरे न हि रोगकारणं कर्मैव साक्षात्तु निमित्तकारणम्।
रसादयस्तेऽसमवायिकारणं दोषाः प्रदुष्टाः समवायिकारणम्॥२८१॥(४.१६) (उपजाति)

---

१. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

(अन्वयः) तस्माच्छरीरे निमित्तकारणं न साक्षात्तु कर्मैव हि रोगकारणम्, ते रसादयोऽसमवायिकारणं प्रदुष्टाः दोषाः समवायिकारणम्।

(अर्थः) इसलिए शरीर (रोग का) साक्षात् कारण नहीं है अपि तु कर्म ही रोग का निमित्तकारण है, छह रस (मधुर-अम्ल-लवण-कटु-कषाय-तिक्त अथवा रसादि धातु) असमवायिकारण है और अतिशय दुष्ट ऐसे दोष समवायिकारण (उपादानकारण) हैं।

[मूल] स्वस्थेन प्रातरुत्थाय दन्तधावनपूर्वकम्।
ताम्बूलमर्दनस्नानसुगन्धाहारसेवनम्॥२८२॥(४.१७)

(अन्वयः) स्वस्थेन प्रातरुत्थाय दन्तधावनपूर्वकं ताम्बूलमर्दनस्नानसुगन्धाहारसेवनम्।

(अर्थः) स्वस्थ(चित्त से) के द्वारा प्रातः काल उठकर दांतों का मार्जन कर के ताम्बूल, मर्दन, स्नान,सुगंध, आहार का सेवन करना चाहिए।

[मूल] वृत्तिहीनं पदभ्रष्टं शोकार्तं शरणागतम्।
शक्तितस्त्वनुवर्तेत मानवं व्याधिपीडितम्॥२८३॥(४.१८)

(अन्वयः) वृत्तिहीनं पदभ्रष्टं शोकार्तं शरणागतं व्याधिपीडितं मानवं तु शक्तितः अनुवर्तेत।

(अर्थः) आजीविका से हीन, पद से भ्रष्ट, शोक से व्याकुल, शरण आए हुवे, रोग से पीडित ऐसे मनुष्य की शक्ति के देखभाल करनी चाहिए।

[मूल] स्मशाने च नदीतीरे शून्यगेहे चतुष्पथे।
देवालये वने रात्रौ न गच्छेद्रोगभीरुकः॥२८४॥(४.१९)

(अन्वयः) रोगभीरुकः रात्रौ स्मशाने नदीतीरे शून्यगेहे चतुष्पथे देवालये वने च न गच्छेत्।

(अर्थः) रोग से डरने वाले को रात्रि के समय स्मशान में, नदी का तीर पर, जिस घर में कोई नही है ऐसे घर में, चौक, देवालय में और वन में नही जाना चाहिए।

[मूल] हिताहारविहारेषु दक्षो नित्यं जितेन्द्रियः।
दयाधर्मविवेकज्ञः स भवेत्सर्वदा सुखी॥२८५॥(४.२०)

(अन्वयः) (यः) हिताहारविहारेषु नित्यं दक्षः जितेन्द्रियः, दयाधर्मविवेकज्ञः स सर्वदा सुखी भवेत्।

(अर्थः) हितकर आहार विहार में सदा सावधान रहने वाला, जिसने अपने इंद्रियों को जिता है, दया,धर्म, विवेक को जानने वाला (ऐसा) वह पुरुष सदा सुखी होता है।

[मूल] वर्षाहिमग्रीष्मचितं विकारं विशोधयेत् यत्नपरो हिताशी ।
शरद्वसन्ताभ्रदिनेषु तस्य न जातु रोगाः प्रभवन्ति तज्जाः॥२८६॥(४.२१) (उपजातिः)

---

१. ज्ञाः इति को२०००८, को१५९३२, ओ २८

(अन्वयः) यत्नपरो हिताशी वर्षाहिमग्रीष्मचितं विकारं विशोधयेत्, तस्य शरद्वसन्ताभ्रदिनेषु तज्जाः रोगाः न प्रभवन्ति।

(अर्थः) प्रयत्न परायण, हित की इच्छा रखने वाला पुरुष बारीश, सर्दी और गरमी के संचित रोगों का शोधन करे, उसको शरद, वसन्त, वर्षा के दिनों मे प्रसिद्ध ऐसे रोगों का प्रभाव नही होगा।

[मूल] मधौ(माघे) मधुरमश्नाति निदाघे मैथुनप्रियः।
पिबेन्नद्यम्बु वर्षासु दधिभोक्ता शरत्सु च॥२८७॥(४.२२)

[मूल] हिमागमेऽतिनिद्रालुः शिशिरे लघुभोजनम्।
यः करोति विमूढत्वात् स नरो रोगवान् भवेत्॥२८८॥(४.२३) युग्मम्।

(अन्वयः) विमूढत्वात् यः माघे मधुरम् अश्नाति, निदाघे मैथुनप्रियः, वर्षासु नद्यम्बु पिबेत्, शरत्सु दधिभोक्ता, हिमागमेऽतिनिद्रालुः शिशिरे लघुभोजनं च करोति स नरो रोगवान् भवेत्।

(अर्थः) अज्ञान से जो पुरुष माघ ऋतु में मीठा खाता है, ग्रीष्म ऋतु में मैथुन प्रिय होता है , वर्षा ऋतु में नदी का पानी पीता है, शरद ऋतु में दही का सेवन करता है, ठंडी में ज्यादा सोता है, शिशिर ऋतु में कम भोजन करता है वह रोगयुक्त होता है।

[मूल] आरामं जलकेलिं च हर्म्यं क्षीरं च वल्लभाम्।
मिष्टान्नं च भजेत् षट्सु वसन्तादिष्वनुक्रमात्॥२८९॥(४.२४)

(अन्वयः) षट्सु वसन्तादिषु आरामम्, जलकेलिं हर्म्यं क्षीरं वल्लभां मिष्टान्नं च अनुक्रमात् भजेत्।

(अर्थः) वसन्तादि छह ऋतुओं में (वसंत ऋतु में) बगीचे, (ग्रीष्म ऋतु में) जलक्रीडा, (वर्षा ऋतु में)प्रासाद(महल), (शरद ऋतु में)दूध,(हेमंत ऋतु में) पत्नी, (शिशिर ऋतु में)मिष्टान्न इनका यथाक्रम सेवन करना चाहिए।

[मूल] यो भुङ्क्ते मात्रया नित्यं यथाकालं हिते रतः।
दिनचर्यां समुद्दिष्टं स्वस्थः कुर्वन्न रोगभाक्॥२९०॥(४.२५)

(अन्वयः) हिते रतः यो यथाकालं नित्यं मात्रया भुङ्क्ते, समुद्दिष्टं दिनचर्यां कुर्वन् स्वस्थः (सः) न रोगभाक् (भवति)।

(अर्थः) हित में रत जो काल के अनुसार हमेशा मात्रा के अनुसार भोजन करता है, विशिष्ट दिनचर्या को करता हुआ वह स्वस्थ किसी भी रोग से युक्त नहीं होता।

[मूल] अजीर्णे सति यो भुङ्क्ते कुपथ्यं कुरुते सदा।
तच्छरीरं कथं लोके भवेद् व्याधिविवर्जितम्?॥२९१॥(४.२६)

(अन्वयः) अजीर्णे सति यो भुङ्क्ते, सदा कुपथ्यं कुरुते, तच्छरीरं लोके कथं व्याधिविवर्जितम् भवेत्?

(अर्थः) जो अजीर्ण होने पर भोजन करता है हमेशा कुपथ्य का सेवन करता है उसका शरीर लोक में कैसे रोगों से रहित होगा?

[मूल] विण्मूत्रनिद्रावमिकासरेतःक्षुत्तृट्श्रमश्वासजवेगरोधात्।
भवन्ति रोगा विविधाः शरीरे वातादयो वैद्यवरैरसाध्याः॥२९२॥(४.२७) (उपजातिः)

(अन्वयः) विण्मूत्रनिद्रावमिकासरेतःक्षुत्तृट्श्रमश्वासजवेगरोधात् शरीरे वैद्यवरैः असाध्याः वातादयः विविधाः रोगाः भवन्ति।

(अर्थः) विष्टा, मूत्र, निद्रा, उलटी,खाँसी, वीर्य(धातु), भूक, प्यास, श्रम, श्वास के वेग के अवरोध से शरीर में श्रेष्ठ वैद्य के द्वारा असाध्य ऐसे वात आदि विविध प्रकार के रोग होते हैं।

[मूल] यः पूर्वमेकवेगार्तो यदि वेगान्तरं भजेत्।
स दूरतो महाव्याधिमाकारयति मृत्यवे॥२९३॥(४.२८)

(अन्वयः) पूर्वं यः एकवेगार्तः यदि वेगान्तरं भजेत्, सः दूरतः मृत्यवे महाव्याधिम् आकारयति।

(अर्थः) पूर्व जो एक वेग से पीडित यदि दूसरे वेग को रोकता है, वह दूर से मृत्यु के लिए महान् व्याधि को बुलाता है।

[मूल] त्यजेद्विषातुरो निद्रां ज्वरी च घृतभोजनम्।
कर्णरोगी शिरःस्नानं व्यवायं नेत्ररोगवान्॥२९४॥(४.२९)

(अन्वयः) विषातुरो निद्राम्, ज्वरी च घृतभोजनम्, कर्णरोगी शिरःस्नानम्, नेत्ररोगवान् व्यवायं त्यजेत्।

(अर्थः) विष से युक्त को नींद का, बुखारी को घी से युक्त भोजन का, कर्णरोगी को सर के ऊपर से स्नान का तथा आँख के रोगी को मैथुन का त्याग करना चाहिए।

मूल] त्वग्दोषक्षयकासाक्षिवक्त्ररोगातुरैर्नरैः।
संसर्गो नैव कर्तव्यो यतः सञ्चारिणश्च ते[१]॥२९५॥(४.३०)

(अन्वयः) त्वग्दोष-क्षय-कास-अक्षिवक्त्ररोगातुरैः नरैः संसर्गो नैव कर्तव्यो यतः ते सञ्चारिणश्च।

(अर्थः) चर्मरोग, क्षय, खांसी, आँख और मुख के रोगों से युक्त मनुष्यों के साथ संसर्ग नहीं करना चाहिए, क्योंकि ये रोग संसर्गजन्य होते हैं।

[मूल] यदि न स्याद् गृहे वित्तमिच्छेदङ्गं गदोज्झितम्।
निशान्ते स पिबेत्तिस्रः प्रसृतीः शीतलं पयः॥२९६॥(४.३१)

(अन्वयः) यदि गृहे वित्तं न स्याद् गदोज्झितम् अङ्गम् (यः) इच्छेत् स निशान्ते तिस्रः प्रसृतीः शीतलं पयः पिबेत्।

(अर्थः) यदि घर में धन न हो और अपना शरीर रोगों से मुक्त चाहता हो तो उसको रात्री के बाद (प्रातः) तीन अंजली ठंडा पानी पीना चाहिए।

---

१. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

[मूल] शीतं सुधोपमं स्वच्छं सलिलं हृदयप्रियम्।
श्रममूर्च्छाभ्रमहरं वर्णदं पित्तनाशनम्॥२९७॥(४.३२)

(अन्वयः) शीतं सुधोपमं स्वच्छं हृदयप्रियं सलिलं श्रममूर्च्छाभ्रमहरं वर्णदं पित्तनाशनम्।

(अर्थः) ठण्डा, अमृत के समान, स्वच्छ, हृदय को प्रिय ऐसा पानी श्रम की मूर्च्छा का हरन करनेवाला, कांति प्रदान करने वाला तथा पित्त का नाश करनेवाला होता है।

[मूल] सदा सर्वेषु भैषज्येष्वशक्तो यः पुमान्भवेत्।
भक्षणीया सदा तेन तोयेनैका हरीतकी॥२९८॥(४.३३)

(अन्वयः) यः पुमान् सदा सर्वेषु भैषज्येष्वशक्तो भवेत् तेन तोयेनैका हरीतकी सदा भक्षणीया।

(अर्थः) जो पुरुष हमेशा सभी तरह के दवाओं को खरीदने में असमर्थ है उसके द्वारा हमेशा पानी के साथ एक हरडे का सेवन करना चाहिए।

[मूल] तीक्ष्णबुद्धिप्रदा स्वर्य्या जराव्याधिविनाशिनी।
अग्न्युद्दीपनरेचनकामानां हितकारीणी॥३९९॥[१](४.३४)

(अन्वयः) तीक्ष्णबुद्धिप्रदा स्वर्य्या जराव्याधिविनाशिनीयं अग्न्युद्दीपनी रेचका हरीतकी हितकारीणी माता ।

(अर्थः) तीक्ष्ण बुद्धि को देने वाली, स्वर को सुधारने वाली, बुढापा रूपी व्याधि का विनाश करने वाली,अग्नि का उद्दीपन करने की इच्छा वाले के लिए, रेच लेने की इच्छा वाले के लिए यह हरडे हितकारी है।

[मूल] मूर्खदत्तं कुभूमिस्थं शटितं कृमिभक्षितम्।
अविज्ञातं च भैषज्यं न ग्राह्यं शुभमिच्छता॥३००॥(४.३५)

(अन्वयः) शुभम् इच्छता मूर्खदत्तं कुभूमिस्थं शटितं कृमिभक्षितम् अविज्ञातं च भैषज्यं न ग्राह्यम्।

(अर्थः) कल्याण की इच्छा करने वाले के द्वारा मूर्ख ने दिया हुआ, बंजर भूमी पर पडा हुआ,किसीने फेंका हुआ , कीडों के द्वारा खाया हुआ तथा अपरिचित औषध का ग्रहण नहीं करना चाहिए।

[मूल] भुक्त्यादौ सलिलं पीतं कार्श्यं मध्ये समानताम्।
स्थूलत्वमपि भुक्त्यन्ते करोति वपुषि ध्रुवम्॥३०१॥(४.३६)

(अन्वयः) भुक्त्यादौ पीतं सलिलं कार्श्यं मध्ये समानताम् भुक्त्यन्ते स्थूलत्वमपि वपुषि ध्रुवम् करोति।

(अर्थः) भोजन से पहले पीया हुआ पानी कृशता, बीच में पीया हुआ पानी सुडौलता तथा भोजन के बाद पिया हुआ पानी निश्चित स्थूलता करता है।

[मूल] वस्त्रपूतं पिबेत्तोयं यः श्रीगुरुसुरातिथीन्।
अर्चयित्वा सदा भुङ्क्ते ततः पाप्मा पलायते॥३०२॥(४.३७)

---

१. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

(अन्वयः) यः वस्त्रपूतं तोयं पिबेत् सदा श्रीगुरुसुरातिथीन् अर्चयित्वा भुङ्कते ततः पाप्मा पलायते।

(अर्थः) जो कपडे से छानकर पानी पीता है जो हमेशा गुरु, देव तथा अतिथियों की पूजा करके भोजन करता है उससे पाप दूर भागते हैं।

[मूल] पवित्रं षड्रसाकीर्णं सुपक्वं वल्लभाहृतम्।
भोजनं जीर्णतामेति भुक्तं मित्रादिभिः सह[१]॥३०३॥(४.३८)

(अन्वयः) पवित्रं षड्रसाकीर्णं सुपक्वं वल्लभाहृतं मित्रादिभिः सह भुक्तं भोजनं जीर्णतामेति।

(अर्थः) शुद्ध, छह रसों से युक्त, अच्छा पका हुआ, पत्नी के द्वारा परोसा गया तथा मित्रों के साथ सेवन किया गया भोजन (शीघ्र) पच जाता है।

[मूल] गव्यं घृतः सत्सलिलं च शीतं बाला बला क्षीरसुभोजनं च।
स्नानं सुभोज्यं हि यथोक्तकाले प्रोक्तानि षट् प्राणकराणि सद्यः॥३०४॥(४.३९)

(अन्वयः) गव्यं घृतः सत्सलिलं शीतं च बाला बला, क्षीरसुभोजनं यथोक्तकाले स्नानं सुभोज्यं च सद्यः षट् प्राणकराणि प्रोक्तानि ।

(अर्थः) गाय का घी, शुद्ध ठंडा जल,छोटी हरडे,खीर का भोजन,योग्य समय पर स्नान और अच्छा खाना ये छह चीजें तुरंत शक्ति देती है।

इति वैद्यकसारसङ्ग्रहः।

ज्योतिस्सारः।

[मूल] ज्योतिःशास्त्रमनादृत्य पठन्नन्यच्च वाङ्मयम्।
न भाति परिपूर्णाङ्गो विचक्षुः पुरुषो यथा॥३०५॥(४.४०)

(अन्वयः) (यः) ज्योतिःशास्त्रम् अनादृत्य अन्यद् वाङ्मयं पठन्, सः न भाति, यथा परिपूर्णाङ्गः विचक्षुः पुरुषः।

(अर्थः) जो ज्योतिष शास्त्र को छोडकर अन्य वाङ्मय को पढता है, वह पुरुष उसी प्रकार नही शोभा देता, जैसे अंग से परिपूर्ण ऐसा आँख रहित पुरुष हो।

[मूल] अतस्तत्सारमुद्धृत्य व्यवहाराय धीमताम्।
साधारणं सुसङ्क्षिप्तं ज्योतिषं किञ्चिदुच्यते॥३०६॥(४.४१)

(अन्वयः) अतः तत्सारमुद्धृत्य धीमतां व्यवहाराय साधारणं सुसङ्क्षिप्तं ज्योतिषं किञ्चिद् उच्यते।

(अर्थः) इसीलिए उसका(ज्योतिष) सार निकालके बुद्धिमानों के व्यवहार के लिए साधारण सुसंक्षिप्त ऐसा ज्योतिष थोडासा कहते है।

---

१. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

[मूल] नन्दा भद्रा तथा पूर्णा शुभकार्ये शुभावहाः।
सङ्ग्रामादौ जया प्रोक्ता रिक्ता बन्धवधादिषु॥३०७॥(४.४२)

(अन्वयः) शुभकार्ये नन्दा भद्रा तथा पूर्णा शुभावहाः, सङ्ग्रामादौ जया, बन्धवधादिषु रिक्ता प्रोक्ता।

(अर्थः) शुभ कार्य में नंदा, भद्रा और पूर्णा शुभ है, संग्रामादि में जया, और बन्ध वध इत्यादि में रिक्ता कही गई हैं।

[मूल] बुधशुक्रेन्दुजीवानां वाराः सर्वेषु कर्मसु।
शुभङ्कराः परेषां च स्वोक्तकार्यैकसाधकाः॥३०८॥(४.४३)

(अन्वयः) जीवानां सर्वेषु कर्मसु बुधशुक्रेन्दुवाराः शुभङ्कराः परेषां च स्वोक्तकार्यैकसाधकाः।

(अर्थः) जीवों को सभी कर्मो में बुध, शुक्र और सोम ये वासर शुभ करनेवाले हैं, बाकी वासर अपने कहे हुए कार्य को सिद्ध करनेवाले होते है।

[मूल] शुक्रज्ञारशनीज्येषु नन्दादितिथयः शुभाः।
प्रतिपन्नैव सौम्येन न च सूर्येण सप्तमी॥३०९॥[१] **(४.४४)**

(अन्वयः) शुक्रज्ञारशनीज्येषु नन्दादितिथयः शुभाः, प्रतिपन्नैव सौम्येन (शुभा) न च सूर्येण सप्तमी(शुभा)।

(अर्थः) शुक्रवार को नंदा तिथि, बुधवार को भद्रा तिथि, मंगलवार को जया तिथि, शनिवार को रिक्ता तिथि, गुरुवार को पूर्णा तिथि शुभ है। प्रतिपदा सोमवार में शुभ नहि, सप्तमी रविवार में शुभ नहि।

[मूल] हस्तो मार्गं च दास्त्रं च मैत्रं पुष्यश्च रेवती।
रोहिणी ज्ञादिवारेषु स योगोऽमृत[२]**सिद्धिकः॥३१०॥(४.४५)**

(अन्वयः) ज्ञादि(अर्कादि)वारेषु हस्तो मार्गं च दास्त्रं च मैत्रं पुष्यश्च रेवती रोहिणी स योगोऽमृतसिद्धिकः।

(अर्थः) रविवार को हस्त नक्षत्र, सोमवार को मृगशीर्ष नक्षत्र, मंगलवार को अश्विनी नक्षत्र, बुधवार को अनुराधा नक्षत्र, गुरुवार को पुष्य नक्षत्र, शुक्रवार को रेवती नक्षत्र, शनिवार को रोहिणी नक्षत्र होने पर अमृतसिद्धि योग बनता है।[३]

[मूल] मघा विशाखा रौद्रं च मूलमग्निश्च रोहिणी।
हस्तः सूर्यादिवारेषु यमघण्टः क्रमाद्भवेत्॥३११॥(४.४६)

(अन्वयः) सूर्यादिवारेषु क्रमाद् मघा विशाखा रौद्रं च मूलमग्निः रोहिणी हस्तः च यमघण्टः भवेत्।

---

१. नन्दा भृगौ बुधे भद्रा मन्दे रिक्ता कुजे जया। गुरौ पूर्णाखिले कार्ये सिद्धियोगाः शुभावहाः॥ (शिल्परत्नाकर १४-१०५)

२. योगस्त्व इति मु. भां

३. अर्के हस्तो मृगश्चन्द्रे गुरौ पुष्योऽश्विनी कुजे। अनुराधा बुधे शुक्रे रेवती रोहिणी शनौ॥
अमृतसिद्धियोगः स्यात् सर्वकार्यार्थसिद्धिदः। (शिल्परत्नाकर १४-१०७,१०८)
हस्तसौम्याश्विनीमैत्रपुष्यपौष्णविरंचितैः।भवत्यमृतसिद्ध्याख्यो योगः सूर्यादिवारगैः॥ (आरम्भसिद्धि टीका-५२)

(अर्थः) रविवार को मघा नक्षत्र, सोमवार को विशाखा नक्षत्र, मंगलवार को आर्द्रा नक्षत्र, बुधवार को मूल नक्षत्र, गुरुवार को कृत्तिका नक्षत्र, शुक्रवार को रोहिणी नक्षत्र, शनिवार को हस्त नक्षत्र होने पर यमघंट योग बनता है।[१]

[मूल] द्विदैवादिचतुष्केषु तेषु सूर्यादिसप्तसु।
वारेषूत्पातको मृत्युः काणः सिद्धिः क्रमाद्भवेत्[२]॥३१२॥(४.४७)

(अन्वयः) तेषु द्विदैवादिचतुष्केषु सूर्यादिसप्तसु वारेषु उत्पातको मृत्युः काणः सिद्धिः क्रमाद्भवेत्।

(अर्थः) विशाखा से आरंभ कर चार चार नक्षत्रों का रविवार आदि वार के साथ योग होने पर क्रम से उत्पात, मृत्यु, काण और सिद्धि योग होते है।

वार योग	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
उत्पात	विशाखा	पूर्वाषाढा	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्प	उत्तराफाल्गुनी
मृत्यु	अनुराधा	उत्तराषाढा	शतभिषक्	अश्विनी	मृगशीर्ष	आश्लेषा	हस्त
काण	ज्येष्ठा	अभिजित्	पूर्वाभाद्रपद	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा
सिद्धि	मूल	श्रवण	उत्तराभाद्रपद	कृत्तिका	पुनर्वसु	पूर्वाफाल्गुनी	स्वाति

[मूल] वेदषण्नवदिक्सङ्ख्ये विश्वविंशतिसम्मिते।
नक्षत्रे सूर्यनक्षत्राद् रवियोगः शुभो मतः॥३१३॥(४.४८)

(अन्वयः) सूर्यनक्षत्राद् वेदषण्नवदिक्सङ्ख्ये विश्वविंशतिसम्मिते नक्षत्रे शुभो रवियोगः मतः।

(अर्थः) सूर्य के नक्षत्र से दिन का नक्षत्र चौथा हो तो चौथा शुभ रवियोग होता है, छठा हो तो छठा शुभ रवियोग होता है, नौवां हो तो नौवां शुभ रवियोग होता है, दसवा हो तो दसवां शुभ रवियोग होता है,तेरहवा हो तो तेरहवा शुभ रवियोग होता है और बीसवा हो तो बीसवा शुभ रवियोग होता है। (इससे अतिरिक्त रवियोग अशुभ है।)

[मूल] ध्रुवमैत्रेन्दुमूलान्त्यस्वातिहस्तमघासु च।
विवाहः शुभदो ज्ञेयो विना लत्तादिदूषणम्॥३१४॥(४.४९)

(अन्वयः) ध्रुवमैत्रेन्दुमूलान्त्यस्वातिहस्तमघासु च विवाहः लत्तादिदूषणम् विना शुभदो ज्ञेयः ।

---

१. उक्तं च दैवज्ञमनोहरेण गर्गेण- **मघा विशाखा चार्द्रा च मूलवृक्षं च कृत्तिका। रोहिणी हस्त इत्येवं सूर्यादिवारेषु यमघण्टाः क्रमाद्रवेः॥** (मुहूर्तचिन्तामणिः पीयूषधारा टीका)
मघाविशाखार्द्रामूलकृत्तिकारोहिणीकरैः।रव्यादिवारसंयुक्तैर्यमघण्टो भृशोऽशुभः॥ (आरम्भसिद्धि टीका-५२)

२. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

(अर्थः) ध्रुव(= उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद) मैत्र = अनुराधा, इंदु = रोहिणी,मूल,रेवती,हस्त और मघा नक्षत्र में यदि लत्तादोष न हो तो विवाह शुभ माना गया है। [१](बुध अपने से पीछे के ७ वें नक्षत्र, राहु ९ वें, पूर्णचन्द्रमा पीछे के २२ वें, और शुक्र अपने पीछे की ५ वें नक्षत्र पर लतादोषकारक (लात मारना) होता है।)

जिस नक्षत्र पर सूर्य है उससे अपने आगे के १२ वें शनि ८ वें बृहस्पति ६ ठे और मंगल तीसरे नक्षत्र पर लत्तादोषकारक होते हैं।

राहु सदा वक्री होता है अतः गणनाक्रम से ९ वाँ नक्षत्र लत्ता कारक होगा। जैसे अश्विनी में राहु हो तो उसके पीछे की नवीं नक्षत्र पूर्वाषाढा नहीं होगा अपि च अश्विनी से अनुलोम ९ वां नक्षत्र आश्लेषा ही समझनी चाहिए॥५९॥

[मूल] रेवत्यादितिकर्णेभ्यो द्वयं हस्तेन्दुमैत्रभम्।
प्रयाणे शुभदं प्रोक्तं त्यक्त्वा तारां विनिन्दिताम्[२]॥३१५॥ (४.५०)

(अन्वयः) विनिन्दितां तारां त्यक्त्वा रेवत्यादितिकर्णेभ्यो द्वयं हस्तेन्दुमैत्रभं प्रयाणे शुभदं प्रोक्तम्।

(अर्थः) निंदित तारा को छोडकर रेवती, पुनर्वसु, हस्त, रोहिणी, अनुराधा नक्षत्र प्रयाण में शुभ फल देने वाले कहे गये है

[मूल] आद्यं रात्रिचतुष्टयं निऋतिभं पौष्णं मघां चाष्टमीम्,
दर्शं भूततिथिं च पर्वदिवसं त्यक्त्वा च सन्ध्याद्वयम्।
इज्ये धीतनुधर्मगेऽथ (मार्ग)भृगुजे चन्द्रे शुभे कामिनीम्,
पुत्रार्थी पुरुषः सुहृष्टमनसा सेवेत् समायां निशि[३]॥३१६॥ (४.५१) (शार्दूलविक्रीडितम्)

(अन्वयः) आद्यं रात्रिचतुष्टयम्, निऋतिभं पौष्णं मघां च, अष्टमीं दर्शं भूततिथिं च, पर्वदिवसं च सन्ध्याद्वयं च त्यक्त्वा अथ इज्ये भृगुजे धीतनुधर्मगे, (मार्ग) शुभे चन्द्रे पुत्रार्थी पुरुषः सुहृष्टमनसा समायां निशि कामिनीं सेवेत्।

(अर्थः) रजोदर्शन के दिन से चार दिन, मूल, रेवती, मघा, नक्षत्र अष्टमी-चतुर्दशी-अमावास्या और पर्वदिन और दोनों संध्यासमय को छोडकर गुरु, शुक्र लग्न, पंचम और नवम स्थान में हो, चंद्रमा शुभ हो तब पुत्रार्थीपुरुष सम (२,४,६) तिथि में रात्री के समय में प्रसन्न मन के साथ स्त्री का सेवन करे।

[मूल] सर्पाग्निवारुणर्क्षैश्च युता भद्रा तिथिर्यदा।
यदि सौरारयोर्वारस्तदा जाता विषाङ्गना[४]॥३१७॥ (४.५२)

---

१. ज्ञराहुपूर्णेन्दुसिताः स्वपृष्ठे भं सप्तगोजातिशरैर्मितं हि। संलत्तयन्तेऽर्कशनीज्यभौमाः सूर्याष्टतर्काग्निमितं पुरस्तात्॥५९॥ (मुहूर्तचिन्तामणिः, विवाहप्रकरणं श्लोक-५९ कर्ता-रामाचार्य,)

२. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

३. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

४. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

(अन्वयः) यदा सर्पाग्निवारुणर्क्षैश्च युता भद्रा तिथिः यदि सौरारयोः वारः तदा जाता विषाङ्गना (भवति)।

(अर्थः) आश्लेषा, कृत्तिका, शतभिषानक्षत्रों से युक्त (भद्रातिथि) हो और शनि या रविवार हो तब पैदा हुई कन्या विषकन्या होती है।

[मूल] मूलादितिस्वातिकरेन्दुराधापौष्णात्तरावासवरोहिणीषु।
पैत्र्याश्विपुष्यश्रुतिवारुणेषु सुरप्रतिष्ठा शुभदा च दीक्षा[१]॥३१८॥ (४.५३) (उपजातिः)

(अन्वयः) मूलादितिस्वातिकरेन्दुराधापौष्णात्तरावासवरोहिणीषु पैत्र्याश्विपुष्यश्रुतिवारुणेषु सुरप्रतिष्ठा दीक्षा च शुभदा (भवति)।

(अर्थः) मूल, पुनर्वसु, स्वाति, हस्त, मृगशीर्ष, अनुराधा, रेवती, तीनउत्तरा(उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरा भाद्रपद) धनिष्ठा, रोहिणी, मघा, अश्विनी, पुष्य, श्रवण, शतभिषा इन नक्षत्रों में देव की प्रतिष्ठा और दीक्षा शुभफल देती है।

[मूल] सङ्क्रान्त्युभयतो यामद्वये विष्ट्यां न वैधृतौ।
व्यतीपाते न गण्डान्ते यामार्द्धे कार्यमारभेत्॥३१९॥(४.५४)

(अन्वयः) सङ्क्रान्ति उभयतो यामद्वये विष्ट्यां वैधृतो न व्यतीपाते गण्डान्ते यामार्द्धे न कार्यम् आरभेत्।

(अर्थः) संक्रान्ति (सूर्य का राशिपरिवर्तन) के पूर्व का एक प्रहर और पश्चात् एक प्रहर, विष्टि=भद्रा, वैधृति, व्यतिपात और गंडात के (पूर्व और पश्चात्) अर्ध प्रहर में कार्य का आरम्भ नहीं करना चाहिए।

[मूल] शुभकर्म तथा यानं गृहारम्भादिकं तथा।
सितेन्दुजीवे नो कार्यं बाले वृद्धे तथाऽऽस्तगे॥३२०॥(४.५५)

(अन्वयः) बाले वृद्धे तथास्तगे सितेन्दुजीवे शुभकर्म तथा यानं तथा गृहारम्भादिकं नो कार्यम्।

(अर्थः) शुक्र, चन्द्र और गुरु बाल, वृद्ध वा अस्त हो तब प्रयाण, गृह आरम्भ आदि शुभ कार्य नहीं करना चाहिए।

[मूल] ग्रासादिसप्तवारेषु मासि हीनेऽधिके तथा।
क्रूरविद्धे क्रूरयुते भे कार्यं नारभेत् क्वचित्॥३२१॥(४.५६)

(अन्वयः) ग्रासादिसप्तवारेषु तथा हीनेऽधिके मासि क्रूरविद्धे क्रूरयुते भे क्वचित् कार्यं न आरभेत्।

(अर्थः) मास के आदि के सात वार में(?) हीनमास में या अधिकमास में, क्रूर ग्रह से विद्ध और क्रूर ग्रह से युक्त नक्षत्र में शुभकार्य का आरम्भ कभी नहीं करना चाहिए।

[मूल] मेषको नक्रकन्याश्च कर्कमीनतुलाभृतः।
तुङ्गाः सूर्यादिखेटानामुच्चान्नीचं तु सप्तमम्॥३२२॥(४.५७)

---

१. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

(अन्वयः) मेषको नक्रकन्याश्च कर्कमीनतुलाभृतः। तुङ्गाः सूर्यादिखेटानामुच्चात्तु सप्तमं नीचम्।

(अर्थः) मेष राशि सूर्य की उच्च राशि है, मकर राशि मंगल की उच्च राशि है, कन्या राशि बुध की उच्च राशि है, कर्क राशि गुरु की उच्च राशि है, मीन राशि शुक्र की उच्च राशि है, तुला राशि शनि की उच्च राशि है, अपनी उच्च राशि से सातवी राशि नीच होती है। सूर्य की नीच राशि तुला है, मंगल की नीच राशि कर्क है, बुध की नीच राशि मीन है, गुरु की नीच राशि मकर है, शुक्र की नीच राशि कन्या है, शनि की नीच राशि मेष है।

[मूल] गुरुर्जीवबुधौ काव्यकोविदौ च विभास्कराः।
विकुजावींद्विदुसूर्यान्मित्राणि विकुजेन्द्विना[1]॥३२३॥(४.५८)

(अन्वयः) गुरुः जीवबुधौ काव्यकोविदौ च विभास्कराः विकुजावीन्दु-इन्दु सूर्यान् मित्राणि विकुर्जेद् विना।

(अर्थः) चंद्र, मंगल और गुरु सूर्य के मित्र ग्रह है। सूर्य और बुध चंद्र के मित्र ग्रह है। सूर्य, चंद्र और गुरु मंगल के मित्र ग्रह है। सूर्य, चंद्र और मंगल गुरु के मित्र ग्रह है। बुध, शनि और राहु शुक्र के मित्र ग्रह है। बुध, शुक्र और राहु शनि के मित्र ग्रह है।

[मूल] मूर्तौ चन्द्रसितौ धने सुरुगुरुर्जीवं विनाऽरित्रिगाः,
शुक्रज्ञौ चतुरस्रगौ गुरुसितौ धर्मात्मजः स्वौ शुभौ।
जीवेन्दू द्युतगौरव(ख)गाः शनिरविश्मापुत्रचन्द्रा ग्रहाः,
सर्वे लाभगताश्च गोचरविधौ शुक्रः शुभश्चान्त्यगः॥३२४॥(४.५९) (शार्दूलविक्रीडितम्)

(अन्वयः) गोचरविधौ चन्द्रसितौ मूर्तौ, सुरुगुरुः धने, जीवं विनाऽरित्रिगाः, चतुरस्रगौ शुक्रज्ञौ, गुरुसितौ धर्मात्मजः स्वौ शुभौ, द्युतगौ जीवेन्दू, खगाः शनिरविश्मापुत्रचन्द्रा ग्रहाः (शुभाः भवन्ति), लाभगताश्च सर्वे (शुभाः भवन्ति), अन्त्यगः शुक्रः शुभः(भवति)।

(अर्थः) लग्न में गुरु और शुक्र धन स्थान में गुरु, छठे और तीसरे स्थान में गुरु के आलावा के ग्रह, छठे आठवे में बुध और शुक्र, पांचवें और नौवें स्थान में गुरु और शुक्र, गुरु और चन्द्र सातवें स्थान में शुभ होते हैं। गुरु बारहवें स्थान में शनि, सूर्य, मंगल और चन्द्र आठवें स्थान, शुक्र व्यय स्थान में गोचर में शुभ होते हैं। (गोचर में चन्द्र और शुक्र प्रथम स्थान में हो तो शुभ होते हैं। गुरु दुसरे स्थान में हो तो शुभ होता है। गुरु को छोडकर अन्य ग्रह तीसरे या छठे स्थान में हो तो शुभ होते हैं। चतुस्र स्थान में शुक्र और गुरु शुभ होते हैं। नौवें और पांचवें स्थान में गुरु और शुक्र शुभ होते हैं। गुरु और चन्द्र सातवें स्थान में शुभ होते हैं। आठवें स्थान में शनि, सूर्य, मंगल, चन्द्र शुभ माने जाते है। ग्यारहवें स्थान में सभी ग्रह शुभ माने जाते हैं। शुक्र बारहवें स्थान में शुभ माना जाता है।)

[मूल] व्ययाऽष्टमगताः सौम्याः सर्वकार्येषु निन्दिताः।
त्रिकोणधनकेन्द्राष्टस्थिताः पापग्रहास्तथा॥३२५॥(४.६०)

---

१. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

(अन्वयः) सौम्याः व्ययाऽष्टमगताः सर्वकार्येषु निन्दिताः तथा त्रिकोणधनकेन्द्राष्टस्थिताः पापग्रहाः।

(अर्थः) सौम्य ग्रह (चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र) बारहवें या आठवें स्थान में हो तो सभी कार्यों में निन्दित (वर्जित) होते हैं। और पापगृह त्रिकोण (५,९) केन्द्र में (१,४,७,१०) और आठवें स्थान में निन्दित कहे गये है।

[मूल] त्रिकोण(ध)नस्रांशुगाः सकलकार्यसिद्धिप्रदाः,
शुभा गगनगामिनस्तदितरास्त्रिवल्लभगाः।
विवाहसमयेऽष्टगौ तरणिसूर्यपुत्रौ शुभौ,
शशाङ्कभृगूलग्नपा रिपुगतास्तथा नो हिताः॥३२६॥(४.६१) (पृथ्वी)

(अन्वयः) त्रिकोणनस्रांशुगाः सकलकार्यसिद्धिप्रदाः शुभाः गगनगामिनः तदितराः त्रिवल्लभगाः विवाहसमयेऽष्टगौ तरणिसूर्यपुत्रौ शुभौ तथा रिपुगताः शशाङ्कभृगुलग्नपा नो हिताः।

(अर्थः) त्रिकोण में पंचम और नवम धनस्थान में, केन्द्र स्थान में शुभग्रह, सकल कार्य की सिद्धि प्रदान करते हैं। पापग्रह तृतीय, वल्लभ (सातवें) और बारहवें स्थान में शुभ होते हैं। विवाह में सूर्य और शनि आठवें स्थान में शुभ होते हैं। चन्द्र, शुक्र और लग्नेश छठे स्थान में शुभ नहीं होते हैं।

[मूल] शुभे सकलकर्मणि ज्ञगुरुभार्गवा लग्नगा,
दिशन्ति सुखसम्पदो विमलषड्बलैः शालिनः।
विलग्नमशुभदं सदा खलखगासनालोकनैः,
शशी निधनगः शुभं न कुरुते कदाचिद्ध्रुवम्॥३२७॥(४.६२) (पृथ्वी)

(अन्वयः) शुभे सकलकर्मणि लग्नगा विमलषड्बलैः शालिनः ज्ञगुरुभार्गवा सुखसम्पदो दिशन्ति खलखगासनालोकनैः विलग्नं सदा अशुभदम्, निधनगः शशी कदाचिद् ध्रुवं शुभं न करुते।

(अर्थः) सभी शुभ कार्य में लग्न में रहे हुवे बुध, गुरु, शुक्र, षड्बल से सहित सुख संपत्ति देते हैं। पापग्रह के होने पर या तो उनकी लग्न पर दृष्टि पडने से लग्न अशुभ फल देता है। आठवें स्थान में चन्द्र कभी शुभ फल नहीं देता है।

इति ज्योतिःसारसङ्ग्रहः।

शकुनसारः।

[मूल] प्रस्थितोऽपि मुहूर्तेन विरुद्धे शकुने स्थिते।
पुरा न योग्यं गमनं तस्माच्छकुनमुच्यते॥३२८॥(४.६३)

(अन्वयः) मुहूर्तेन प्रस्थितोऽपि विरुद्धे शकुने स्थिते पुरा गमनं न योग्यं तस्माच्छकुनमुच्यते।

(अर्थः) मुहूर्त में प्रस्थान करनेवाले पुरुष को यदि शकुन अनुकूल नहीं है तो आगे जाना योग्य नहीं है इसी कारण से उसे शकुन कहा गया है।

[मूल] सपुत्रा स्त्री सवत्सा गौर्नृपः पाठीनखञ्जनौ।
आमं मांसं ततं तूर्यं शङ्खभेरिरथध्वनिः॥३२९॥(४.६४)

[मूल] पूर्णकुम्भः प्रसूनानि शुक्लाम्बरधरो नरः।
मृत्तिकाऽक्षतपात्रं च च्छत्रचामरवारणाः॥३३०॥(४.६५)

[मूल] यायिनोऽभीष्टदा ह्येते दर्शनात्श्रवणादपि।
कुरङ्गा दक्षिणाः श्रेष्ठा यायिनामोजसङ्ख्यया॥३३१॥(४.६६)

(अन्वयः) सपुत्रा स्त्री, सवत्सा गौः,नृपः पाठीनखञ्जनौ आमं मांसं ततं तूर्यं शङ्खभेरिरथध्वनिः पूर्णकुम्भः प्रसूनानि शुक्लाम्बरधरो नरः मृत्तिकाऽक्षतपात्रं च च्छत्रचामरवारणाः ह्येते दर्शनात्श्रवणादपि यायिनोऽभीष्टदा। कुरङ्गा दक्षिणाः श्रेष्ठा यायिनामोजसङ्ख्यया।

(अर्थः) पुत्र के साथ स्त्री, बछडे के साथ गाय, राजा, वेदपाठी ब्राह्मण, कच्चा मांस तत वाद्य(घण्टा आदि) तूर्य, शंख, भेरी और रथ की आवाज, पूर्ण कुंभ, फुल, शुक्लवस्त्र को धारण किया हुआ पुरुष, मिट्टी का और अक्षत का पात्र, छत्र, चामर और हाथी ये शकुन दर्शन से और श्रवण से प्रयान करनेवाले को अभीष्ट फल देते है। प्रयाण करनेवाले के दाहिनी ओर से जानेवाले विषम संख्या के कुरंग(हरिण, हरिण की एक जाती) श्रेष्ठ माने जाते हैं।

[मूल] पिङ्गलौलूककाकाश्च खरदुर्गादयः पथि।
गच्छतो वामतः श्रेष्ठा विशतो दक्षिणाश्रिताः॥३३२॥(४.६७)

(अन्वयः) पिङ्गलौलूककाकाः खरदुर्गादयः च पथि वामतः गच्छतः श्रेष्ठाः, दक्षिणाश्रिताः विशतः श्रेष्ठाः।

(अर्थः) पिंगला (नेवला), घुक (उल्लू), कौवा, गधा, दुर्गा(कबूतरी) ये जाने के समय प्रयाण करनेवाले के बांयी ओर शुभ माने जाते है प्रवेश में दाहिनी ओर शुभ माने जाते हैं।

[मूल] सगर्भा स्त्री रथो भग्नः कन्या प्रोक्तवयोऽधिका।
क्व यासीति प्रवक्तारो गमनप्रतिषेधकाः॥३३३॥(४.६८)

(अन्वयः) सगर्भा स्त्री भग्नः रथः प्रोक्तवयोऽधिका कन्या क्व यासि इति प्रवक्तारः गमनप्रतिषेधकाः।

(अर्थः) सगर्भा स्त्री, टुटा हुआ रथ, अपने वय से अधिक वय बतानेवाली कन्या, "कहाँ जाते हो?" ऐसा पूछनेवाले गमन का प्रतिषेध करते हैं।

[मूल] हीनाङ्गं कर्दमालिप्तं व्याधिक्षीणं नराधमम्।
दृष्ट्वा सम्मुखमायातं न गच्छेत् कार्यसिद्धये॥३३४॥(४.६९)

(अन्वयः) सम्मुखम् आयातं हीनाङ्गम्, कर्दमालिप्तम्, व्याधिक्षीणम्, नराधमम् दृष्ट्वा कार्यसिद्धये न गच्छेत्।

(अर्थः) आँख के सामने आते हुए अंग से हीन, कीचड से लेपा हुआ, व्याधि से जीर्ण हुआ है ऐसे नराधम को देखकर कार्यसिद्धि की इच्छा हो तो गमन नहीं करना चाहिए।

इति शकुनसारसङ्ग्रहः।

सामुद्रिकसारः।

[मूल] **विनापि जन्मसमयमुदर्कफलसूचकम्।**
सामुद्रिकं यतस्तस्मात्तत्सारं किञ्चिदुच्यते॥३३५॥(४.७०)

(अन्वयः) यतः विना अपि जन्मसमयम्, उदर्कफलसूचकम्, सामुद्रिकं तस्मात् तत् सारं किञ्चित् उच्यते।

(अर्थः) सामुद्रिक शास्त्र जन्म के समय के बिना भी भविष्य कथन करता है अतः उसका कुछ सार कहा जाता है।

[मूल] **पाणिपादतले पद्मं ध्वजो मत्स्यस्तथाऽङ्कुशः।**
छत्रं वा दृश्यते यस्य स नरो भूपतिर्भवेत्॥३३६॥(४.७१)

(अन्वयः) यस्य पाणिपादतले पद्मम्, ध्वजः, मत्स्यः, अङ्कुशः तथा छत्रं वा दृश्यते, स नरः भूपतिः भवेत्।

(अर्थः) जिसके हाथ और पैर के तलवे पर कमल, ध्वज, मच्छी, अंकुश या छत्र दिखता है वह पुरुष पृथ्वी का पति होता है।

[मूल] **स्वरः सत्त्वं तथा नाभिर्गभीरं शस्यते त्रयम्।**
विपुलं तथा सद्भिर्वक्षोभालकराननम्॥३३७॥(४.७२)

(अन्वयः) स्वरः सत्त्वं तथा नाभिः त्रयं गभीरं शस्यते, तथा सद्भिः वक्षः भालकराननं विपुलम्।

(अर्थः) शरीर में स्वर, सत्त्व और नाभि यह तीन गहरे हो तो शुभ माने जाते है और छाती, ललाट, हाथ और मुख बडे हो तो शुभ गिने जाते हैं।

[मूल] **जङ्घाद्वयं तथा पृष्ठं कण्ठं पुंश्चिह्नमेव च।**
यस्यैतानि च ह्रस्वानि स नरो भाग्यवान् भवेत्॥३३८॥(४.७३)

(अन्वयः) यस्य जङ्घाद्वयम्, पृष्ट(ष्ठ)म्, कण्ठम्, पुंश्चिह्नम् एव च एतानि ह्रस्वानि स नरः भाग्यवान् भवेत्।

(अर्थः) जिस पुरुष के दो जंघा, पीठ का पिछला भाग, कंठ, पुरुषचिह्न ये सब छोटे हो वह भाग्यवान होता है।

[मूल] **अक्षिणी च भ्रुवोर्मध्यं स्तनमध्यं तथा हनुः।**
एतानि यस्य दीर्घाणि स सदा सेव्यते श्रिया॥३३९॥(४.७४)

(अन्वयः) यस्य अक्षिणी, भ्रुवोः मध्यम्, स्तनमध्यम् च तथा हनुः एतानि दीर्घाणि स सदा श्रिया सेव्यते।

(अर्थः) जिसके आँखे, दो भ्रुकूटी का मध्य भाग, दो स्तनों का मध्य भाग और ठोडी यह सब दीर्घ है, वह सदा लक्ष्मी के द्वारा सेवन किया जाता है।

[मूल] **नखताल्वधरापाङ्गजिह्वाकरतलादिषु।**
रक्तत्वं दृश्यते यस्य स पुमान् पुरुषोत्तमः॥३४०॥(४.७५)

(अन्वयः) यस्य नखताल्वधरापाङ्गजिह्वाकरतलादिषु रक्तत्वं दृश्यते स पुमान् पुरुषोत्तमः।

(अर्थः) जिसके नाखून, तालु, ओठ, अपांग(आँख की बाहरी कोर), जिह्वा, हाथ की हथेली आदि में रक्तत्व(रक्त वर्ण) दिखाई देता है वह पुरुष पुरुषोत्तम है।

[मूल] ताम्बूलापूरितं वक्त्रं यस्याङ्गं चन्दनार्च्चितम्।
शिरः पुष्पाकराकीर्णं तं लक्ष्मीः समुपासते॥३४१॥(४.७६)

(अन्वयः) यस्य अङ्गं चन्दनार्चितम्, वक्त्रं ताम्बूलापूरितम्, शिरः पुष्पाकराकीर्णं तं लक्ष्मीः समुपासते।

(अर्थः) जिसका अंग चंदन से अर्चित है, जिसका मुख ताम्बूल से युक्त है, शिर फूलों से युक्त है, ऐसे पुरुष की लक्ष्मी पूजा करती है।

[मूल] उभयोः सन्ध्ययोः शेते बह्वाहारपरस्तु यः।
सदाऽतिनिष्ठुरं ब्रूते स पुमान् हीयते श्रिया॥३४२॥(४.७७)

(अन्वयः) यः उभयोः सन्ध्ययोः शेते, बह्वाहारपरः तु सदा अतिनिष्ठुरं ब्रूते, स पुमान् श्रिया हीयते।

(अर्थः) जो सुबह और शाम सन्ध्या के समय सोता है, बहुत आहार करता है, अतिनिष्ठुर वचन बोलता है वह पुरुष लक्ष्मी हीन हो जाता है।

[मूल] तृणच्छेदं नखैर्भूमिलेखनं व्यर्थहास्यताम्।
यः करोति नरो मूढः स दरिद्री सदा भवेत्॥३४३॥(४.७८)

(अन्वयः) यः तृणच्छेदम्, नखैः भूमिलेखनम्, व्यर्थहास्यताम् करोति, स मूढः नरः सदा दरिद्री भवेत्।

(अर्थः) जो घास को तोडता है, नाखून से जमीन को कुरडता है, व्यर्थ हसता है, वह मुर्ख पुरुष सदा दरिद्री होता है।

इति सामुद्रिकसारसङ्ग्रहः।

अथ स्त्री।

[मूल] सदाचारपरा नित्यं सुशीला मितभाषिणी।
प्रसन्नवदना साध्वी सा लक्ष्मी गृहमागता॥३४४॥(४.७९)

(अन्वयः) (या) नित्यं सदाचारपरा, सुशीला, मितभाषिणी, प्रसन्नवदना, साध्वी सा गृहम् आगता लक्ष्मीः।

(अर्थः) जो सदा सदाचार में परायण, अच्छे शीलवाली, कम बोलनेवाली, प्रसन्नमुख वाली (घर में हो तो ऐसा समझना चाहिए की) साक्षात् लक्ष्मी घर आई है।

[मूल] अन्यगेहरता क्रूरा चपला बहुभाषिणी।
साऽऽपद्देहमयी गेहे वनिता कलहप्रिया॥३४५॥(४.८०)

(अन्वयः) अन्यगेहरता, क्रूरा, चपला, बहुभाषिणी, कलहप्रिया सा वनिता गेहे आपद्देहमयी।

(अर्थः) दूसरों के घर में रत, क्रूर, चपल, बहुत बोलने वाली, कलह में प्रेम रखने वाली ऐसी वह स्त्री घर में आपत्ति है।

[मूल] शरीरं रोमशं यस्या निम्नाक्षी ह्रस्वनासिका।
श्मश्रुश्यामोन्नतोष्ठी च वरणीया न कन्यका॥३४६॥(४.८१)

(अन्वयः) यस्याः शरीरं रोमशम्, निम्नाक्षी, ह्रस्वनासिका, श्मश्रुश्यामोन्नतोष्ठी च कन्यका न वरणीया।

(अर्थः) जिसके शरीर पर अत्यधिक रोम हो, जिसकी आँखे नीची हो,जिसका नाक छोटा हो (नकटी हो), जिसको मूछ आती हो, जिसके ओठ उन्नत हो ऐसी कन्या के साथ विवाह नहीं करना चाहिए।

[मूल] बिम्बाधराकुरङ्गाक्षी समावयवराजिता।
सौभाग्यलक्षणैर्युक्ता सा कन्योद्वाहितुं शुभा॥३४७॥(४.८२)

(अन्वयः) बिम्बाधराकुरङ्गाक्षी समावयवराजिता सौभाग्यलक्षणैः युक्ता सा कन्या उद्वाहितुं शुभा।

(अर्थः) जिसके ओठ बिंब की तरह हो, आँखे मृग की तरह हो, शरीर के अवयव सम सुशोभित हो, जो सौभाग्य लक्षण से युक्त हो, वह कन्या विवाह के लिए शुभ है।

[मूल] शुभं वचनमर्चितं विमलमानसं प्रोन्नतं
सतां नयनतुष्टिदं सहजसुन्दरं यद्वपुः।
मतिः सुकृतशालिनी परगुणानुवादे रति
र्भवेदुपकृतिप्रियः किमपरैः शुभैर्लक्षणैः॥३४८॥(४.८३)

(अन्वयः) यद् वपुः शुभं वचनम्, अर्चितं विमलमानसम्, सतां प्रोन्नतम्, नयनतुष्टिदम्, सहजसुन्दरम्, मतिः सुकृतशालिनी, परगुणानुवादे रतिः, उपकृतिप्रियः भवेत् अपरैः शुभैः लक्षणैः किम्?।

(अर्थः) जिसका वचन शुभ हो, लोगों द्वारा मान्य किया जाता हो, मन निर्मल हो, सज्जनों के नयनों को आनन्द देनेवाला हो, उन्नत, सहज शरीर हो, जिसकी बुद्धि सुकृत् के विषय में सोचती हो, जिसे दुसरों के गुण गाने में आनन्द आता हो, जिसे उपकार करना अच्छा लगता हो, इस से अतिरिक्त अन्य शुभलक्षण से क्या प्रयोजन है?

अथ रत्नपरीक्षा।

[मूल] रत्नशब्दो गुणोत्कर्षाद्युवत्यश्वद्विपादिषु।
इह तूपलरत्नानां किञ्चिल्लक्षणमुच्यते॥३४९॥(४.८४)

(अन्वयः) रत्नशब्दः गुणोत्कर्षाद् युवत्यश्वद्विपादिषु। इह तु उपलरत्नानां किञ्चित् लक्षणम् उच्यते।

(अर्थः) रत्न शब्द - गुण के उत्कर्ष से युवति, घोडा, हाथी आदि अर्थ में प्रयुक्त होता है। यहाँ पाषाण रूपी रत्नों का थोडासा लक्षण कहते है।

[मूल] बलदैत्याङ्गजातानि रत्नानि च दधीचितः।
भूस्वभावाद्वन्दत्येके वैचित्र्यमुपलेष्विदम्[1]॥३५०॥(४.८५)

(अन्वयः) बलदैत्याङ्गजातानि रत्नानि दधीचितः च एके भूस्वभावात् वदन्ति, उपलेषु इदं वैचित्र्यम्।

(अर्थः) रत्न बलनामक दैत्य के शरीर से पैदा हुआ है, दधीचि ऋषि के शरीर से पैदा हुआ है। धरती के स्वभाव के कारण पत्थर के रत्नों में विविधता देखने को मिलती है।

[मूल] सर्वद्रव्यैरभेद्यं यद्वज्रं स्निग्धं सुरश्मिवत्।
तरत्यप्सु तडिद्वह्निशक्रचापोपमं शुभम्॥३५१॥ (४.८६)

(अन्वयः) यद् वज्रं सुरश्मिवत् स्निग्धम्, सर्वद्रव्यैः अभेद्यम्, अप्सु तरति, (स) तडिद्वह्निशक्रचापोपमं शुभम्।

(अर्थः) जो वज्र अच्छे रश्मि की तरह स्निग्ध है, सब द्रव्य के द्वारा अभेद्य है, पानी में तैरता है, उससे सुन्दर किरणे निकलती है, वह बीजलि, अग्नि और इंद्र धनुष की तरह शुभ है।

[मूल] वज्रं विलक्षणं सम्पज्जीवितस्वजनक्षयम्।
सुलक्षणं करोतीष्टं विद्युद्विषभयापहम्[2]॥३५२॥ (४.८७)

(अन्वयः) वज्रं विलक्षणं सम्पज्जीवितस्वजनक्षयं (करोति) सुलक्षणम् इष्टं करोति विद्युद्विषभयापहम्।

(अर्थः) लक्षणरहित वज्र संपत्ति, जीवित और स्वजन का नाश करता है और लक्षणसहित वज्र इच्छित पूर्ण करता है। बिजली, जहर और भय का नाश करता है।

[मूल] श्वेतं द्विजानां हितकारि वज्रं रक्तं तथा पीतमिलाधिपानाम्।
शिरीषपुष्पद्युतिमद्विशां तच्छितेतरं शूद्रहितं प्रदृष्टम्॥३५३॥(४.८८) (उपजातिः)

(अन्वयः) श्वेतं वज्रं द्विजानां हितकारि, रक्तं तथा पीतम् इलाधिपानाम्, शिरिषपुष्पद्युतिमत् विशाम्, तत् शितेतरं शूद्रहितं प्रदृष्टम्।

(अर्थः) सफेद वज्र द्विजों के लिए हितकर है, रक्त वर्ण और पीला क्षत्रियों के लिए हितकर है, शिरीष फुल के कान्ति के समान वैश्यों के लिए हितकर है, और काला वज्र शूद्र को हितकारी है।

अथ मुक्ता।

[मूल] द्विपाहिशुक्तिशङ्खाभ्रमीनशूकरवेणुतः।
मुक्ताफलानि जायन्ते साम्प्रतं बहु शुक्तिजम्॥३५४॥(४.८९)

(अन्वयः) द्विपाहिशुक्तिशङ्खाभ्रमीनशूकरवेणुतः साम्प्रतं मुक्ताफलानि जायन्ते बहु शुक्तिजम्।

(अर्थः) मोती हाथी, साप, शुक्ति, शंख, अभ्र, मीन, सूअर, बाँस(वेणु)से उत्पन्न होते है। वर्तमान में ज्यादातर शिप में ही पैदा होते है उनसे मुक्ता फल उत्पन्न होते है।

---

१. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

२. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

[मूल] इन्द्रद्वीपकुलोद्भूतं कुम्भिकुम्भोद्भवं च यत्।
अनर्घ्यं गुणवत् मुक्ताफलं हि पृथुलं हितम्॥३५५॥(४.९०)

(अन्वयः) यद् इन्द्रद्वीपकुलोद्भूतं कुम्भिकुम्भोद्भवं च गुणवत् अनर्घ्यं पृथुलं मुक्ताफलं हि हितम्।

(अर्थः) इन्द्रद्वीप कुल में उत्पन्न और हाथी के कुंभस्थल में उत्पन्न मोती अमूल्य होता है और गुणयुक्त होता है बडा और हितकारी होता है।

[मूल] शेषतक्षकयोर्वंश्या नागास्तत्फणमध्यजा।
मुक्ता नीलद्युतिः स्निग्धा वक्ष्येऽतस्तत्परीक्षणम्॥३५६॥(४.९१)

(अन्वयः) शेषतक्षकयोः वंश्या नागाः तत्फणमध्यजा नीलद्युतिः स्निग्धा मुक्ता अतः तत् परीक्षणं वक्ष्ये।

(अर्थः) शेषनाग और तक्षकनाग के वंश में उत्पन्न होने वाले सर्प को नाग कहते हैं। उनकी फना के मध्यभाग में नीलवर्ण का स्निग्ध मोती होता है। अब उसकी परीक्षा करुगाँ।

[मूल] भाजने सुप्रदेशस्थे राजते मौक्तिकं स्थितम्।
तद्दृष्ट्वा स्याद्यदा वृष्टिरकस्मात् ज्ञेयमौरगम्॥३५७॥(४.९२)

(अन्वयः) राजते भाजने सुप्रदेशस्थे स्थितं मौक्तिकं तद् दृष्ट्वा यदा अकस्मात् वृष्टिः स्यात् तदा औरगं ज्ञेयम्।

(अर्थः) अच्छे प्रदेश में, चाँदी के पात्र में, नाग के मोती को रखा है उसको देखकर अचानक बारिश होती है तो वह मोती नाग का जान लेना चाहिए।

[मूल] भौजङ्गं मौक्तिकं राज्ञां धृतं शत्रून्निकृन्तति।
यशो विकाशयत्याशु श्रियं मातङ्गशालिनीम्॥३५८॥(४.९३)

(अन्वयः) राज्ञां धृतं भौजङ्गं मौक्तिकं शत्रून् निकृन्तति यशः मातङ्गशालिनीं श्रियम् आशु विकाशयति।

(अर्थः) राजा यदि नाग के मोती को धारण करलेता है तो शत्रु का विनाश होता है यश फैलाता है और हाथीओं के समान संपत्ति को देता है।

[मूल] शङ्खोद्भवं सुवृत्तं स्याद् भ्राजिष्णु शशिकान्तिमत्।
जातं करकवन्मेघसम्भूतं हि तडित्प्रभम्॥३५९॥(४.९४)

(अन्वयः) शङ्खोद्भवं सुवृत्तं स्यात्, भ्राजिष्णु शशिकान्तिमत्, मेघसम्भूतं करकवत् तडित्प्रभं जातम्।

(अर्थः) शंख में उत्पन्न हुआ मोती गोल होता है, चमकीला होता है। चन्द्रमा के समान सफेद होता है। बादल में पैदा हुआ मोती (करक-ओलों) के समान होता है। उसका वर्ण बिजली के समान होता है।

[मूल] पवित्रं तिमिजं मत्स्याक्षिप्रभं च गुणोत्तरम्।
पितृदेवादिकार्येषु शस्तं सर्वजनप्रियम्॥३६०॥(४.९५)

(अन्वयः) पितृदेवादिकार्येषु पवित्रं तिमिजं मत्स्याक्षिप्रभं गुणोत्तरं सर्वजनप्रियं शस्तम्।

(अर्थः) मछली से पैदा होनेवाला मोती पवित्र माना जाता है। यह मोती मछली के आँख के समान वर्णवाला होता है। यह मोती गुणयुक्त और सर्वजन प्रिय है और देवकार्य में प्रशस्त गिना जाता हैं।

[मूल] दंष्ट्रामूले वराहाणां जातं सर्वगुणास्पदम्।
वाराहं बहुमूल्यं स्याच्चन्द्रकान्तिसमप्रभम्॥३६१॥(४.९६)

(अन्वयः) वराहाणां दंष्ट्रामूले जातं सर्वगुणास्पदं वाराहं बहुमूल्यं चन्द्रकान्तिसमप्रभं स्यात्।

(अर्थः) सुअर की दाढ के मूल में पैदा होनेवाला मोती वाराहमोती सर्वगुणों का स्थान है बहुमूल्य है और चन्द्रमा के समान वर्णवाला है।

[मूल] पर्वण्यष्टोत्तरशते महद्वंशस्य जायते।
कर्पूरस्फटिकप्रख्यं चिपिटं वेणुजं हि तत्॥३६२॥(४.९७)

(अन्वयः) महद्वंशस्य पर्वण्यष्टोत्तरशते कर्पूरस्फटिकप्रख्यं चिपिटं वेणुजं हि तत् जायते।

(अर्थः) एकसौ आठपर्ववाले बडे बाँस में जो मोती होता है उसे वेणुज कहा जाता है। वह कपूर और स्फटिक के समान उज्वल और चपटा होता है।

[मूल] शङ्खवेणुवराहेभनागाभ्रतिमिसम्भवाः।
गुणाधिकतया तक्षैरवेध्या मौक्तिकाः स्मृताः॥३६३॥ (४.९८)

(अन्वयः) शङ्खवेणुवराहेभनागाभ्रतिमिसम्भवाः गुणाधिकतयाः तक्षैः अवेध्या मौक्तिकाः स्मृताः।

(अर्थः) शंख मोती से वेणु मोती अधिक गुणवान होता है, वेणुमोती से वाराह मोती अधिक गुणवान है, वाराह मोती से हाथी मोती अधिक गुणवान है, हाथी के मोती से नाग मोती अधिक गुणवान है, नाग मोती से बादलमोती अधिक गुणवान है और बादल के मोती से मछली का मोती अधिक गुणवान होता है ऐसा उसके जानकार व्यक्ति कहते है। मोती को भेदा नहीं जाता।

[मूल] श्यामं वैष्णवमिन्द्रदैवतमिदं चन्द्रप्रभाभासुरम्,
पीतं वारुणमञ्जनेन सदृशं याम्यं च मुक्ताफलम्।
गुञ्जादाडिमबीजताम्रमिति यत् प्रोक्तं मरुद्दैवतम्,
निर्द्धूमानलसन्निभं तु चतुरैराग्नेयमित्युच्यते॥३६४[१]॥ (४.९९)

(अन्वयः) इदं श्यामं वैष्णवम्, इन्द्रदैवतं चन्द्रप्रभाभासुरम्, पीतं वारुणम्, अञ्जनेन सदृशं याम्यं च, गुञ्जादाडिमबीजताम्रं मरुद्दैवतम् इति मुक्ताफलं प्रोक्तम्, निर्द्धू(र्धू)मानलसन्निभं तु चतुरैः आग्नेयम् इति उच्यते।

(अर्थः) काले मोती के देवता विष्णु है, सफेद मोती के देवता इन्द्र है, पीत मोती के देवता वरुण है, अंजन के समान वर्णवाले मोती के देवता यम है, गूंजा का फल और अनार के बीज के समान लालमोती के देवता मरुत् है और निर्धूम अग्नि के समान वर्णवाले मोती के देवता अग्नि है।

---

१. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

अथ पद्मरागादयः।

[मूल] **प्रायो हि मणयः सर्वे पद्मरागादयो हिताः।**
स्वच्छाः स्निग्धप्रभा ज्योतिष्मन्तो रागविराजिताः॥३६५॥(४.१००)

(अन्वयः) प्रायः पद्मरागादयः सर्वे मणयः हि हिताः, स्वच्छाः, स्निग्धप्रभाः, ज्योतिष्मन्तः, रागविराजिताः।

(अर्थः) पद्मराग आदि सभी मणि स्वच्छ, स्निग्ध प्रभावाले, चमकीले और रंगीन होते है ऐसे मणि हित करते है।

[मूल] **अमनोज्ञश्च दुर्विद्धो लेखाकीर्णः सशर्करः।**
कलुषो मन्दकान्तिश्च मणिः सर्वोऽपि गर्हितः॥३६६॥(४.१०१)

(अन्वयः) अमनोज्ञः, दुर्विद्धः, लेखाकीर्णः, सशर्करः, कलुषः, मन्दकान्तिः च मणिः सर्वोऽपि गर्हितः।

(अर्थः) जो दिखने में अच्छा नहीं है, जो बुरी तरह से छेद किया गया है, जिसमें रेखा पड गई है, जिसमें जाली है, जो गंदा है, जिसकी कान्ति मन्द है ऐसा मणि गर्हित माना गया है।

अथ नागमणिः।

[मूल] **शिखिकण्ठालिवर्णो यो दीपप्रदीपशिखाप्रभः।**
दृश्यते मूर्ध्नि नागानामनर्घ्यो मणिरुत्तमः॥३६७॥(४.१०२)

(अन्वयः) यः शिखिकण्ठालिवर्णः, दीपप्रदीपशिखाप्रभः नागानां मूर्ध्नि दृश्यते, सः अनर्घ्यः मणिः उत्तमः।

(अर्थः) जो मणि मोर के कंठ के समान वर्णवाला है, अग्निशिखा के समान जिसकी कान्ति है ऐसा अमूल्य मणि नाग के मस्तक पर हि दिखता है वह उत्तम है।

[मूल] **बिभर्ति धरणीधवो मणिमहर्घ्यमेनं सदा,**
भवन्ति खलु तस्य नो रिपुविषाग्निदोषाः क्वचित्।
न तस्य विषये कदाचिदपि सम्भवन्तीतयः,
जयेत् स जगतीतलं ननु मणेः प्रभावादपि॥३६८[१]॥(४.१०३)

(अन्वयः) धरणीधवः सदा एनम् अनर्घ्यं मणिं बिभर्ति, रिपुविषाग्निदोषाः तस्य खलु नो क्वचित् भवन्ति। तस्य विषये कदाचिदपि इतयः न सम्भवन्ति, ननु स मणेः प्रभावादपि जगतीतलं जयेत्।

(अर्थः) जो राजा इस मूल्यवान मणि को सदा धारण करता है उसको शत्रु विष और अग्नि के दोष नहीं लगते है। उसके विषय में कभी भी कष्ट नहीं होते, मणि के प्रभाव से वह तीनों जगत को जित लेता है।

---

१. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

अथ वैराग्यम्

[मूल] दृढं बद्धाः पाशैर्विविधकृतकर्मप्रणिहितै
र्न जानन्तस्तत्त्वं किमपि परमानन्दविषयम्।
धनं पुत्राः स्त्री चेत्यहतममतामन्दमतयो
भवाम्भोधौ मज्जन्त्यहह विहताः प्राणिन इमे॥३६९॥(४.१०४) (शिखरिणी)

(अन्वयः) विविधकृतकर्मप्रणिहितैः पाशैः दृढं बद्धाः परमानन्दविषयं किम् अपि तत्त्वं न जानन्तः इमे विहताः प्राणिनः धनं पुत्राः स्त्री चेत्यहतममतामन्दमतयो अहह भवाम्भोधौ मज्जन्ति।

(अर्थः) विविध प्रकार के किए हुए संचित कर्म के पाश के द्वारा मजबूत बाँधे गए है ऐसे, परम आनंद के विषय में कुछ भी तत्त्व न जानते हुए यह सब विशेष रूप से मारे गए प्राणि अरेरे!(खेद वाचक) भव रूपी सागर में डुबते हैं।

[मूल] एके च रोगैः परिभूतदेहा विहाय बन्धून् यमसद्म यान्ति।
वाञ्छति चान्ये स्थिरतां पुनर्यज्जगत्यहो मोहबलं महीयः॥३७०॥(४.१०५) (उपजातिः)

(अन्वयः) एके रोगैः परिभूतदेहा बन्धून् विहाय यमसद्म यान्ति, पुनः अन्ये च यज्जगति स्थिरतां वाञ्छति अहो महीयः मोहबलम्।

(अर्थः) रोगों के द्वारा परिभूत देह वाले कोई बन्धू बांधवों को छोडकर यमलोक जाते हैं, और (कुछ) इस जगत में रहने की इच्छा करते हैं अहो मोहरूपी बल कितना बलवान है।

[मूल] रक्तमांसविलिप्तानि चर्मणा वेष्टितान्यपि।
अस्थीनि स्नायुनद्धानि शरीरमिह कथ्यते॥३७१॥(४.१०६)

(अन्वयः) रक्तमांसविलिप्तानि अपि चर्मणा वेष्टितानि स्नायुनद्धानि अस्थीनि इह शरीरं कथ्यते।

(अर्थः) रक्त,मांस से लेपन किया हुआ, त्वचा से आवृत, हड्डी और स्नायु से बंधा हुआ ऐसा यह शरीर कहा जाता है।

[मूल] तत्प्रत्यङ्गं मलाकीर्णमतिदुर्गन्धिमज्जडम्।
व्याधिशोकबहुक्लेशं ममतामन्दिरं महत्॥३७२॥(४.१०७)

(अन्वयः) तत् प्रत्यङ्गं मलाकीर्णम्, अतिदुर्गन्धिमत्, जडम्, व्याधिशोकबहुक्लेशम्, महत् ममतामन्दिरम्।

(अर्थः) वह(शरीर) प्रति अंग में मल से भरा हुआ, अतिशय दुर्गंधि से युक्त, जड, व्याधि, शोक, बहुत क्लेश से युक्त ऐसा बडा ममता का मंदिर है।

[मूल] गर्भे जरायुनिर्बन्धसङ्कटे पतितस्य वै।
दुःखं सञ्जायते जन्तोर्दुःसहं दशमासनम्॥३७३॥(४.१०८)

(अन्वयः) गर्भे जरायुनिर्बन्धसङ्कटे पतितस्य जन्तोः दशमासनं दुःसहं दुःखं सञ्जायते।

(अर्थः) गर्भ, बुढापा, जरायु बद्ध(पूर्ण) ऐसे संकट में गिरे हुए मनुष्य को दश मास (तक) सहन करने अयोग्य ऐसा दुःख उत्पन्न होता है।

[मूल] बाल्ये ततः पूतिगन्धिमललिप्ताङ्गकः सदा।
व्याधिभिः परिभूतश्च स दुःखीयत्यनिशं शिशुः॥३७४॥(४.१०९)

(अन्वयः) ततः पूतिगन्धिमललिप्ताङ्गकः व्याधिभिः परिभूतः च सः शिशुः बाल्ये सदा अनिशं दुःखीयति।

(अर्थः) उसके बाद पूति(बदबूदार),गंध, मल इनसे जिसका अंग लिप्त किया है, व्याधिओं के द्वारा आवृत ऐसा बालक बाल्य अवस्था में सदा निरंतर दुःख में अनुभव करता है।

[मूल] सम्पुष्टसर्वावयवः कन्दर्पकलितान्तरः।
धनयौवनगर्वेण नित्यं माद्यति मन्दधीः॥३७५॥(४.११०)

(अन्वयः) सम्पुष्टसर्वावयवः कन्दर्पकलितान्तरः मन्दधीः धनयौवनगर्वेण नित्यं माद्यति।

(अर्थः) पोषित हुए है सब अवयव जिसके, मन में कामदेव के द्वारा पकडा हुआ ऐसा मंद बुद्धि वाला धन और यौवन के गर्व से सदा प्रमाद करता है।

[मूल] अस्थिरं यौवनं प्राप्य परस्त्रीरागरञ्जितः।
धनं विपुलमासाद्य विकर्मशतमाचरेत्॥३७६॥(४.१११)

(अन्वयः) अस्थिरं यौवनं प्राप्य परस्त्रीरागरञ्जितः विपुलं धनं आसाद्य शतं विकर्म आचरेत्।

(अर्थः) परस्त्री के प्रेम में रममाण हुआ है ऐसा अस्थिर यौवन को प्राप्त करके बहोत धन को मिलाकर सैकडो पापकर्म करता है।

[मूल] मुखं लालाभिराकीर्णं जराजर्जरितं वपुः।
परिक्षीणाखिलाङ्गस्य तृष्णैका परिवर्द्धते॥३७७॥(४.११२)

(अन्वयः) लालाभिः आकीर्णं मुखम्, जराजर्जरितं वपुः, परिक्षीणाखिलाङ्गस्य एका तृष्णा परिवर्धते।

(अर्थः) लार(थूक)से भरा हुआ मुख, बुढापे से जीर्ण हुआ शरीर, सर्वांग से कृश हुआ ऐसा(बुढापन उसमें) (सिर्फ)एक लालसा ही बढती है।

[मूल] तस्माच्च राजा सन्मानं शरीरं यौवनं धनम्।
अनित्यमिव पश्येत श्रीसङ्ग्रामोपदेशतः॥३७८॥(४.११३)

(अन्वयः) तस्मात् च राजा श्रीसङ्ग्रामोपदेशतः सन्मानम्, शरीरम्, यौवनम्, धनम् अनित्यम् इव पश्येत(त्) ।

(अर्थः) इसिलिए श्रीसंग्राम के उपदेश से राजा सन्मान, शरीर, तारुण्य, धन अनित्य के समान देखने चाहिए।

[मूल] इति मत्वा च सर्वज्ञः परमात्मा परः पुमान्।
वीतरागश्चिरं ध्येयः संसारतरणेप्सुभिः॥३७९॥(४.११४)

(अन्वयः) इति मत्वा च संसारतरणेप्सुभिः सर्वज्ञः परमात्मा परः पुमान् वीतरागः चिरं ध्येयः।

(अर्थः) ऐसा मान के संसार से तरने की इच्छा करने वालों के द्वारा सर्वज्ञ, परमात्मा, श्रेष्ठ पुरुष ऐसे वीतराग का दीर्घकाल ध्यान करना चाहिए।

[मूल] योगीन्द्रध्यानगम्यो यः करुणासिन्धुरव्ययः।
मुमुक्षिभिर्यथा ध्येयस्तद् ध्यानमधुनोच्यते[१]॥३८०॥(४.११५)

(अन्वयः) योगीन्द्रध्यानगम्यः करुणासिन्धुः अव्ययः यः मुमुक्षिभिः यथा ध्येयः तद् ध्यानम् अधुना उच्यते।

(अर्थः) योगींद्रों को ध्यान से प्राप्त होने वाला, करुणा का सागर, जिसका नाश नही होता है ऐसा जो मुमुक्षुओं के द्वारा जैसे ध्यान करने योग्य है वह ध्यान अब कहते है।

[मूल] पिण्डस्थं च पदस्थं च रूपस्थं च सुसिद्धिदम्।
रूपातीतमिति ध्यानं चतुर्द्धोक्तं मनीषिभिः॥३८१॥ (४.११६)

(अन्वयः) पिण्डस्थम्, पदस्थम्, रूपस्थं, रूपातीतम् इति मनीषिभिः चतुर्धा सुसिद्धिदं ध्यानम् उक्तम्।

(अर्थः) पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ, रूपातीत ऐसा विद्वानों के द्वारा चार प्रकार का अच्छी सिद्धि देने वाला ध्यान कहा गया है।

[मूल] अन्तःकरणसंस्थं यच्छरीरे निश्चलं भवेत्।
तन्मयत्वादिशुद्धं तत् पिण्डस्थं ध्यानमुच्यते॥३८२॥ (४.११७)

(अन्वयः) यत् शरीरे अन्तःकरणसंस्थं निश्चलं भवेत् तत् तन्मयत्वादिशुद्धं पिण्डस्थं ध्यानम् उच्यते।

(अर्थः) जो शरीर, अन्तकरण में संस्थित ऐसा निश्चल है, वह तन्मयत्व आदि से शुद्ध ऐसा पिंडस्थ ध्यान कहा जाता है।

[मूल] महामन्त्रे च मन्त्रे च मालामन्त्रेऽथवा स्तुतौ।
स्वप्नादिलब्धमन्त्रे वा पदस्थं ध्यानमुच्यते॥३८३॥(४.११८)

(अन्वयः) महामन्त्रे, मन्त्रे, मालामन्त्रे, स्तुतौ अथवा स्वप्नादिलब्धमन्त्रे वा पदस्थं ध्यानम् उच्यते।

(अर्थः) महामंत्र में, मंत्र में, माला मंत्र में (जाप के मंत्र) स्तुति में अथवा स्वप्न आदि में प्राप्त हुए मंत्र में (जो ध्यान होता है वह) पदस्थ ध्यान कहा जाता है।

[मूल] मूर्तिस्वरूपमालम्ब्य मनोज्ञमविकारकम्।
यथावस्थितरूपेण ध्यानं रूपस्थितं हि तत्॥३८४॥ (४.११९)

(अन्वयः) मनोज्ञं अविकारकं मूर्तिस्वरूपम् आलम्ब्य यथा अवस्थितरूपेण ध्यानं तत् हि रूपस्थितम्।

(अर्थः) मनोज्ञ और अविकार की जनक मूर्ति के स्वरूप का आलम्बन लेकर उसका यथावस्थित रूप से ध्यान करना रूपस्थ ध्यान है।

---

१. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

[मूल] निर्गुणानन्दतत्त्वस्याव्यक्तस्य परमात्मनः।
अलक्षस्यैव यद् ध्यानं रूपातीतं तदुच्यते[१]॥३८५॥ (४.१२०)

(अन्वयः) निर्गुणानन्दतत्त्वस्य अव्यक्तस्य अलक्षस्य परमात्मनः एव यद् ध्यानं तद् रूपातीतम् उच्यते।

(अर्थः) गुणरहित, आनन्द स्वरूप ऐसा तत्त्व, अव्यक्त, अलक्ष ऐसे परमात्म का हि जो ध्यान वह रूपातीत कहा जाता है।

[मूल] निशीथे यस्तु जागर्ति मितं वक्ति जितेन्द्रियः।
अल्पं मधुरमश्नाति स योगी सिद्धिमाप्नुयात्॥३८६॥(४.१२१)

(अन्वयः) जितेन्द्रियः यः निशीथे जागर्ति, मितं वक्ति, अल्पं मधुरम् अश्नाति स योगी सिद्धिम् आप्नुयात्।

(अर्थः) जिसने अपने इंद्रियों को जिता है ऐसा जो ब्रह्ममुहूर्त में जागता है, थोडासा बोलता है, अल्प और मधुर खाता है वह योगी सिद्धि को प्राप्त करता है।

[मूल] श्रुते तत्त्वेऽप्यनभ्यासो बहुनिद्रालुता भ्रमः।
जनेऽरतिः कामगोष्ठी योगिनो नाशहेतवः॥३८७॥(४.१२२)

(अन्वयः) श्रुते तत्त्वे अपि अनभ्यासः बहुनिद्रालुता भ्रमः जने अरतिः कामगोष्ठी योगिनः नाशहेतवः (भवन्ति)।

(अर्थः) सुने हुए तत्त्व में अनभ्यास, बहोत निद्रालुता, भ्रम, लोगों में अरति, काम के विषय में गोष्ठी(बाते करने वाले) योगी के नाश के लिए कारण होते है।

[मूल] योगश्चतुर्विधो मन्त्र१लय२राज३हठा४भिधः।
सिद्ध्यत्यभ्यासयोगेन सद्गुरोरुपदेशतः॥३८८॥(४.१२३)

(अन्वयः) मन्त्र$_{१}$ लय$_{२}$ राज$_{३}$ हठाभिधः$_{४}$ चतुर्विधः योगः सद्गुरोरुपदेशतः अभ्यासयोगेन सिद्ध्यति।

(अर्थः) मन्त्रयोग$_{१}$, लययोग$_{२}$, राजयोग$_{३}$, हठयोग$_{४}$ इत्यादि नामसे चार प्रकार का योग सद्गुरु के उपदेश और अभ्यासयोग से सिद्ध होता है।

[मूल] पद्मासनाद्यासनेषु संस्थितः प्राणरोधकृत्।
यथोक्तं ध्यानमास्थाय समाधिं परमं विशेत्॥३८९॥(४.१२४)

(अन्वयः) पद्मासनादि आसनेषु प्राणरोधकृत् संस्थितः यथोक्तं ध्यानम् आस्थाय परमं समाधिं विशेत्।

(अर्थः) पद्मासन इत्यादि आसनों में प्राण का निरोध करके योग्य रूप से स्थित ऐसा (पुरुष) विधिपूर्वक ध्यान को प्राप्त करकें श्रेष्ठ ऐसी समाधि में प्रवेश करता है।

[मूल] महामन्त्रादिकं मन्त्रं जपन्नेकाग्रमानसः।
मन्त्रादेवाप्नुयात्सिद्धिं मन्त्रयोगस्ततो मतः॥३९०॥(४.१२५)

(अन्वयः) एकाग्रमानसः महामन्त्रादिकं मन्त्रं जपन् मन्त्रात् एव सिद्धिम् आप्नुयात्, ततः मन्त्रयोगः मतः।

(अर्थः) एकाग्र मन वाला(पुरुष) महामंत्र आदि मंत्र का जाप करते हुए मंत्र से ही सिद्धि को प्राप्त करता है, इसीलिए मंत्रयोग माना है।

---

१. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

अथ लययोगः।

[मूल] द्वैपायनादियोगीन्द्रैः साधितोऽयं महात्मभिः।
लययोगः शुभो गोप्यो नवचक्रलयात्मकः॥३९१॥(४.१२६)

(अन्वयः) द्वैपायनादियोगीन्द्रैः महात्मभिः शुभः, गोप्यः, नवचक्रलयात्मकः, अयं लययोगः साधितः।

(अर्थः) द्वैपायन आदि योगींद्र ऐसे महात्माओं के द्वारा शुभ, गोपनीय, नौ चक्रलयात्मक(स्वरूप) ऐसा यह लययोग सिद्ध किया गया है।

[मूल] कन्दाख्यं प्रथमं चक्रमाधारे लिङ्गमूलके।
स्वाधिष्ठानं द्वितीयं स्यान्नाभिचक्रं तृतीयकम्॥३९२॥(४.१२७)

[मूल] चतुर्थं हृद्गतं कण्ठे पञ्चमं तालुगं ततः।
षष्ठं भ्रूमध्यदेशस्थं भ्रूचक्रं सप्तमं विदुः॥३९३॥(४.१२८)

[मूल] ब्रह्मरन्ध्रेऽष्टमं चक्रं व्योमाख्यं नवमं ततः।
भवेत्पूर्णं गिरौ पीठे तत्र ध्यात्वा विमुच्यते॥३९४॥(४.१२९)

(अन्वयः) लिङ्गमूलके आधारे कन्दाख्यं प्रथमं चक्रम्, स्वाधिष्ठानं द्वितीयं स्यात्, नाभिचक्रं तृतीयकं हृद्गतं चतुर्थम्, कण्ठे पञ्चमम्, ततः तालुगं षष्ठम्, भ्रूमध्यदेशस्थं भ्रूचक्रं सप्तमं विदुः ब्रह्मरन्ध्रे अष्टमं चक्रम्, ततः व्योमाख्यं नवमं पूर्णं भवेत्, तत्र गिरौ पीठे ध्यात्वा विमुच्यते।

(अर्थः) लिङ्गमूल के आधार में कन्द नाम का पहिला चक्र है, स्वाधिष्ठान दुसरा, और नाभिचक्र तीसरा चक्र है। हृदय के स्थान में गया हुआ चौथा, कंठ में पाचवा, उसके बाद तालु में स्थित छठा, (दो)भ्रूकूटि के मध्य देश में स्थित ऐसा भ्रूचक्र सातवा चक्र जानना चाहिए। ब्रह्मरन्ध्र में आठवा चक्र, व्योम नाम का नौवा होता है, वहा पर्वत पीठ में ध्यान करकें पूर्ण मुक्त होता है।

अथ राजयोगः।

[मूल] पवनोन्मत्तमातङ्गं जित्वा सद्बुद्धियोगतः।
साधितो राजयोगोऽयं दत्तात्रेयादियोगिभिः॥३९५॥(४.१३०)

(अन्वयः) दत्तात्रेयादियोगिभिः सद्बुद्धियोगतः पवनोन्मत्तमातङ्गं जित्वा अयं राजयोगः साधितः।

(अर्थः) दत्तात्रेय आदि योगियों के द्वारा सद्बुद्धि के योग से पवन रूपी उन्मत्त हाथी को जितकर यह राजयोग सिद्ध किया गया है।

[मूल] सद्गुरोः सन्निधौ शुद्धपवनाभ्यासकृच्छुचिः।
बिशतन्तुनिभां मूलात्सुप्तां कुण्डलिनीं सुधीः॥३९६[१]॥(४.१३१)

---

१. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

[मूल] **बोधितां पवनाघातैः सुषुम्नान्तः प्रवेशयेत्।**
क्रमेण पञ्चचक्राणि भेदयित्वोर्द्ध्वगामिनीम्[१]॥३९७॥(४.१३२)

[मूल] **नयेत्कुण्डलिनीं चक्रे सहस्रदलसञ्ज्ञिते।**
तत्र पीयूषपूर्णां तां कृत्वा सिद्धिं पराव्रजेत्॥३९८॥(४.१३३)

(अन्वयः) शुद्धपवनाभ्यासकृत् शुचिः सुधीः सद्गुरोः सन्निधौ मूलात् बिशतन्तुनिभां सुप्तां कुण्डलिनीं बोधितां पवनाघातैः सुषुम्नान्तः प्रवेशयेत्, क्रमेण पञ्चचक्राणि भेदयित्वा उर्द्ध(र्ध्व)गामिनीं कुण्डलिनीं सहस्रदलसञ्ज्ञिते चक्रे नयेत्, तत्र तां पीयूषपूर्णां कृत्वा सिद्धिं पराव्रजेत्।

(अर्थः) पवित्र और सद्बुद्धिशाली, शुद्ध पवन(प्राणयाम) की अभ्यास करनेवाला साधक सद्गुरू के सान्निद्ध्य में बैठकर कमल की नाल के समान सोई हुई कुण्डलिनी को जगाकर आघात देकर मूलाधार चक्र से सुषुम्णा नाडी में प्रवेश कराएँ क्रमशः छह चक्रों का भेद करके ऊपर जाती हुई कुण्डलिनी को सहस्रदल नाम के चक्र में ले जाएँ। वहाँ पर उसे अमृतमयी बनाकर सिद्धि प्राप्त करे।

अथ हठयोगः।

[मूल] **मार्कण्डेयेन चाष्टाङ्गः षडङ्गस्तदनन्तरम्।**
गोरक्षप्रमुखैः पूर्वं साधितोऽयं हठाभिधः॥३९९॥(४.१३४)

(अन्वयः) मार्कण्डेयेन च अष्टाङ्गः तदनन्तरं गोरक्षप्रमुखैः षडङ्गः, पूर्वम् अयं हठाभिधः साधितः।

(अर्थः) मार्कंडेय ने अष्टांग और उसके गोरक्ष आदि प्रमुखों कें द्वारा बाद षडंग, पहिले यह हठ नाम का योग सिद्ध किया गया है।

[मूल] **तस्याङ्गानि यमः सम्यक् नियमो ध्यानमासनम्।**
धारणाप्राणसंरोधप्रत्याहारसमाधयः॥४००॥(४.१३५)

(अन्वयः) तस्याङ्गानि सम्यक् यमः, नियमः, ध्यानम्, आसनम्, धारणा, प्राणसंरोधः, प्रत्याहारः, समाधिः।

(अर्थः) उसके (योग) अंग सम्यक् यम, नियम, आसन, प्राणसंरोध, प्रत्याहार और ध्यान, धारणा, समाधि ये हैं।

[मूल] **लक्षणानि यमादीनामन्यशास्त्रप्रयोगतः।**
विज्ञेयान्यत्र नोक्तानि ग्रन्थगौरवभीतितः[२]॥४०१॥(४.१३६)

(अन्वयः) अन्यशास्त्रप्रयोगतः यमादीनां लक्षणानि विज्ञेयानि, ग्रन्थगौरवभीतितः अत्र न उक्तानि।

(अर्थः) अन्य शास्त्र के प्रयोग से यम आदि अंगों के लक्षण जानना चाहिए. ग्रंथविस्तार के भीति से यहाँ नहीं कहे है।

---

१. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

२. अयं श्लोकः हस्तप्रतिषु न दृश्यते-को२०००८, को१५९३२, ओ २८७८

[मूल] चतुर्विधस्याऽप्यङ्गानि तत्तन्मतविभेदतः।
सम्भवन्ति यमादीनि वसुषड्भेदसङ्ख्यया॥४०२॥(४.१३७)

(अन्वयः) चतुर्विधस्य अपि तत्तन्मतविभेदतः वसुषड्भेदसङ्ख्यया यमादीनि अङ्गानि सम्भवन्ति।

(अर्थः) उसके उसके मत के भेद से, चार प्रकार के योग के भी यम आदि अडसठ अंग सम्भव है।

[मूल] चतुर्विंशतितीर्थेशा जम्बूस्वाम्यादयश्च ये।
योगैः प्रक्षीणकर्माणः प्राप्नुयुर्मोक्षमक्षयम्॥४०३॥(४.१३८)

(अन्वयः) ये जम्बूस्वाम्यादयः चतुर्विंशतितीर्थेशाः योगैः प्रक्षीणकर्माणः अक्षयं मोक्षं प्राप्नुयुः।

(अर्थः) जो जम्बू स्वामी आदि चोविस तीर्थंकरों नें योग के द्वारा कर्म को क्षीण करते हुए अक्षय ऐसे मोक्ष प्राप्त किया।

इति चतुर्विधो योगः।

[मूल] ढिल्यामल्लावदीने नरपतितिलके रक्षति क्ष्मामधीशे,
सोनीश्रीसाङ्गणाख्यः समभवदुदितश्रीलसत्कीर्तिपूरः।
तत्पुत्रः पद्मराजः प्रथितगुणगणस्तत्सुतः सूरसञ्ज्ञ-
स्तत्सुनुर्धर्मनामा तदनु च वरसिङ्घोऽभवत् सत्यशीलः॥४०४॥(४.१३९) (स्रग्धरा)

(अन्वयः) ढिल्यामल्लौ नरपतितिलके क्ष्मां रक्षति अधीशे अदीने उदितश्रीलसत्कीर्तिपूरः सोनीश्रीसाङ्गणाख्यः समभवद् तत्पुत्रः प्रथितगुणगणः पद्मराजः तत्सुतः सूरसञ्ज्ञस्तत् सुनुर्धर्मनामा तदनु च सत्यशीलः वरसिङ्घो(सन्धः) अभवत्।

(अर्थः) दिल्ली में राजाओं में श्रेष्ठ अल्लाउद्दीन खीलजी राज्य करता था तब उदित लक्ष्मी के कारण जिसकी कीर्ति फैली हुई है ऐसा सांगण सोनी नामक (श्रेष्ठी) हुआ। गुणों से प्रसिद्ध ऐसा उसका पुत्र पद्मराज हुआ, उसका पुत्र सूर हुआ, उसका पुत्र धर्मसेन हुआ और उसके बाद सत्यव्रती वरसिंह हुआ।

[मूल] नरदेवधनाख्यौ च तत्पुत्रौ द्वौ बभूवतुः।
ओसवालकुलोत्तंसौ दीनानाथकृपाकरौ॥४०५॥(४.१४०)

(अन्वयः) ओसवालकुलोत्तंसौ दीनानाथकृपाकरौ तस्य नरदेवधनाख्यौ द्वौ पुत्रौ बभूवतुः।

(अर्थः) उसके (वरसिंह के) ओसवालकुल की शिखा(आभूषण), दीनों का नाथ और कृपा करनेवाले ऐसे उनके नरदेव और धन(देव) नाम के दो पुत्र हुए।

[मूल] चन्द्रपुर्यां धनाख्येन वितीर्य विपुलं धनम्।
मोचिताः शकसङ्कष्टान्नराः शतसहस्रशः॥४०६॥(४.१४१)

(अन्वयः) धनाख्येन चन्द्रपुर्यां विपुलं धनं वितीर्य शतसहस्रशः नराः शकसङ्कष्टान् मोचिताः।

(अर्थः) धनसिंह ने चंद्रपुरी में बहुत धन देकर लाखों लोगों को शकों के संकट से बचाया था।

[मूल] तज्ज्येष्ठो नरदेव एव समभूत् ख्यातः क्षितौ मण्डपे,
सत्रागारकरः सदोद्यतकरः सत्पात्रदः सर्वदः।
हूसङ्गक्षितिपालसंसदि सतां मान्यः परार्थैक—
कृद्भाण्डागारधुरन्धरः स च परस्त्रीसोदरः सुन्दरः॥४०७॥(४.१४२) (शार्दूलविक्रीडितम्)

(अन्वयः) तत् क्षितौ मण्डपे सतां हूसङ्गक्षितिपालसंसदि मान्यः सत्रागारकरः सदोद्यतकरः सत्पात्रदः सर्वदः परार्थैककृद्भाण्डागारधुरन्धरः परस्त्रीसोदरः सुन्दरः च सः ज्येष्ठः नरदेव एव ख्यातः समभूत्।

(अर्थः) उस मांडवगढ में हुसंग नाम के राजा के सभा में सज्जनों को मान्य, हमेशा सत्पात्र में दान देने के लिए उद्यत, परोपकारी, बडा भांडागारी, परनारी सहोदर, सुंदर ऐसा वह ज्येष्ठ नरदेव विख्यात था।

[मूल] जयत्ययं सम्प्रति तत्तनूजः सङ्ग्रामसिंहः सततं दयालुः।
परोपकारैककरः सुशीलः सौजन्यसिन्धुर्जिनभक्तियुक्तः॥४०८॥(४.१४३)

(अन्वयः) सम्प्रति अयं तत्तनूजः दयालुः परोपकारैककरः सुशीलः सौजन्यसिन्धुः जिनभक्तियुक्तः सङ्ग्रामसिंहः सततं जयति।

(अर्थः) वर्तमान में उसका संग्रामसिंह नामक पुत्र जो दयालु, परोपकारी, सुशील, सौजन्य का सागर और जिनभक्त है।

[मूल] नरदेवजसङ्ग्रामाङ्गणमाश्रित्य मार्गणाः।
लब्ध्वा लक्षं पुनः स्थानमायान्ति स्वयमद्भुतम्॥४०९॥(४.१४४)

(अन्वयः) नरदेवजसङ्ग्रामाङ्गणमाश्रित्य मार्गणाः लब्ध्वा पुनः स्वयम् अद्भूतं लक्षं स्थानम् आयान्ति।

(अर्थः) नरदेव के पुत्र संग्राम के आंगन में आये हुए मांगने वाले लोग लाखों का धन प्राप्त कर अपने अद्भुत स्थान को प्राप्त करते है।

[मूल] सङ्ग्रामे नरदेवजेऽद्भूतमहो सर्वं दरीदृश्यते,
मुख्या यत्र दया परोपकरणं शत्रुत्ववार्तापि न।
भ्रातृत्वं परसुन्दरीषु परवित्तस्याऽभिलाषः कुतः,
कीर्तिश्चन्द्रकरोज्ज्वलाऽत्र विजयः सम्प्राप्यते सर्वदा॥४१०॥(४.१४५) (शार्दूलविक्रीडितम्)

(अन्वयः) अहो सङ्ग्रामे नरदेवजे सर्वम् अद्भुतं दरीदृश्यते, यत्र मुख्या परोपकरणं दया शत्रुत्ववार्तापि न। परसुन्दरीषु भ्रातृत्वं परवित्तस्याभिलाषः कुतः, अत्र कीर्तिः चन्द्रकरोज्वला सर्वदा विजयः सम्प्राप्यते।

(अर्थः) नरदेव के पुत्र संग्रामसिंह के जीवन में सभी अद्भुत है। जिसमें मुख्य है, परोपकार, रक्षा, जिसके पास दुश्मनी की बात ही नहीं होती, परनारी में भ्रातृभाव है, पर द्रव्य की अभिलाषा कहाँ से होगी? यहाँ पर चंद्र के किरण के समान उज्वल कीर्ति है और सर्वदा विजय की प्राप्ति है।

[मूल] नखेषुभू १५२० सम्मितविक्रमाब्दे पञ्चेभरामेन्दु१३८५ मिते च शाके।
चैत्रस्य षष्ट्यां सितपक्षजायां शुक्रस्य वारे शशिभे गविन्दौ॥४११॥(४.१४६) (उपजातिः)

(अन्वयः) नखेषुभू १५२० सम्मितविक्रमाब्दे पञ्चेभरामेन्दु१३८५ मिते च शाके चैत्रस्य सितपक्षजायां षष्ट्यां शुक्रस्य वारे शशिभे गविन्दौ।

(अर्थः) विक्रम के १५२० वे वर्ष में शक संवत् १३८५ में चैत्र सुद ६ के दिन शुक्रवार में जब चंद्र नक्षत्र में था तब।

[मूल] चापोदये वीर्ययुतैश्च खेटैः श्रीमालवेन्द्र महमूदभूपे।
जेतुं महीपालनिजामसाहिं युद्धेन याते दिशि दक्षिणस्याम्॥४१२॥(४.१४७) (ईन्द्रवज्रा)

(अन्वयः) महीपालनिजामसाहिं युद्धेन जेतुं चापोदये श्रीमालवेन्द्र महमूदभूपे वीर्ययुतैः खेटैः च दक्षिणस्यां दिशि याते ।

(अर्थः) निझामशाह राजा को जीतने के लिये मालव के राजा महमूद शक्तिशाली सैनिकों के साथ दक्षिण दिशा में गया।

[मूल] लसत्प्रतिस्थानपुरेऽतिरम्ये गोदावरीतीरतरङ्गपूते।
जिनं प्रणम्येह सुबुद्धिसिन्धुं सङ्ग्रामसिंहः कुरुते कवीन्द्रः॥४१३॥(४.१४८) (उपजातिः)

(अन्वयः) गोदावरीतीरतरङ्गपूते अतिरम्ये लसत्प्रतिस्थानपुरे कवीन्द्रः सङ्ग्रामसिंहः जिनं प्रणम्येह सुबुद्धिसिन्धुं कुरुते।

(अर्थः) यहाँ अतिशय रम्य, गोदावरी तीर के तरंग से पवित्र ऐसे शोभायमान प्रतिस्थान (पैठण)पुर में कवींद्र संग्रामसिंह जिन को प्रणाम करके अच्छे बुद्धिरूपीसागर को करता है।

[मूल] श्रीमद्दक्षिणभूपतिं जितवतः कुम्भेभपञ्चानन—
स्योद्यद्दुर्जरगर्वपर्वतमहत्पक्षच्छिदो ग्रासने।
खल्वीश्रीमहमूदसाहिनृपतेर्विश्वासमुद्राधरः,
सङ्ग्रामः स्वकलत्रमित्रविलसत्पुत्रैश्चिरं जीवतु॥४१४॥(४.१४९) (शार्दूलविक्रीडितम्)

(अन्वयः) श्रीमद्दक्षिणभूपतिं जितवतः कुम्भेभपञ्चाननस्योद्यद्दुर्जरगर्वपर्वतमहत्पक्षच्छिद्रो ग्राह्यः खल्वीश्रीमहमूदसाहिनृपतेः विश्वासमुद्राधरः, सङ्ग्रामः स्वकलत्रमित्रविलसत्पुत्रैः चिरं जीवतु।

(अर्थः) जिसने दक्षिण के राजा को जिता है। जो दुश्मनरूपी हाथी के गंडस्थल का भेदन करने में सिंह समान है। गुजरात के राजा का गर्वरूपी पर्वत के बडे भाग को जिसने छेद दिया है ऐसे श्री महमूदशा खल्वी (खीलजी) राजा की विश्वास की मुद्रा (अंगूठी) धारण करनेवाला संग्रामसिंह अपने पत्नी, मित्र, पुत्रों के साथ चिरायु हो।

[मूल] गौरा भाति च यस्य गौरवगुणैर्विश्वम्भरेवाऽपरा,
रत्नालङ्कृतिसोज्ज्वलाखिलपरस्त्रीसोदरस्य प्रिया।
शृङ्गारादिरसेन कान्तसुभगा सङ्ग्रामसिंहस्य तत्-
प्रोक्ते बुद्धिनिधौ प्रकीर्णकतरङ्गोऽयं चतुर्थोऽभवत्॥४१५॥(४.१५०)

(अन्वयः) यस्य च अखिलपरस्त्रीसोदरस्य रत्नालङ्कृतिसोज्ज्वला गौरवगुणैः अपरा विश्वम्भरा इव शृङ्गारादिरसेन कान्तसुभगा प्रिया गौरा भाति (तस्य) सङ्ग्रामसिंहस्य प्रोक्ते बुद्धिनिधौ अयं प्रकीर्णकतरङ्गः अभवत्।

(अर्थः) परस्त्री के भाई समान जिसकी रत्न और अलङ्कार से उज्ज्वल, गौरवगुण से दूसरी पृथ्वी के समान, शृङ्गारादि रसों से कान्त और सुभग गौरा नामक पत्नी है उस सङ्ग्रामसिंह विरचित बुद्धिसागर ग्रंथ में प्रकीर्णक नामक चौथा तरंग पूर्ण हुआ।

॥इति श्री ओसवंशावतंसेन सर्वजीवदयापरेण श्रीसङ्ग्रामसिंहेन विरचिते
बुद्धिसागरे चतुर्थः प्रकीर्णकतरङ्गः॥

परिशिष्ट-१

श्लोकानाम् अकारादिक्रमः

श्लोक	तरंग	श्लोक		श्लोक	तरंग	श्लोक	
अक्षिणी च भ्रुवोर्मध्यं	४	७४	३३९	अश्लीलामितवक्तृत्व	३	५०	२४४
अक्षुद्रः सुन्दरः पाप	१	६३	६३	अश्वानां षट्सहस्री	२	९७	१८४
अजीर्णे सति यो भुङ्क्ते	४	२६	२९१	असम्भाष्या भवन्त्येते	३	३८	२३२
अज्ञानादथवा लोभात्	१	३४	३४	अस्थिरं यौवनं प्राप्य	४	१११	३७६
अतस्तत्सारमुद्धृत्य	४	४१	३०६	आक्रन्दं विपुलं चैव	३	६६	२६०
अतिथिर्विमुखो याति	१	७०	७०	आचारे व्यवहारे च	३	७	२०१
अतिस्नेहो न कर्तव्यः	३	४२	२३६	आद्यं रात्रिचतुष्टयं	४	५१	३१६
अतो महीपतिर्दुष्ट	२	५१	१३८	आपत्स्वप्यनृतं वाच्यं	३	२८	२२२
अतोऽत्र धर्ममूलत्वा	१	१९	१९	आयामविस्तराघाते	३	६२	२५६
अथ सङ्ग्रामसिंहोऽसौ	२	५	९२	आयामविस्तराघाते	३	६३	२५७
अथ साधारणान् धर्मा	१	५५	५५	आरामं जलकेलिं च	४	२४	२८९
अधर्ममूलं वैरस्य	१	३८	३८	आहारशुद्धिरहितो	१	५४	५४
अधिकारनियुक्तानां	२	१८	१०५	इति मत्वा च सर्वज्ञः	४	११४	३७९
अनीतिज्ञः प्रधानादि	२	५३	१४०	इत्याचारविचारज्ञो	२	३९	१२६
अनुभूय परं योनि	४	१२	२७७	इत्यादि शालिहोत्रोक्तै	२	९५	१८२
अनुरागश्च दयाया	१	८४	८४	इन्द्रद्वीपकुलोद्भूतं	४	९०	३५५
अन्तःकरणसंस्थं य	४	११७	३८२	इह निन्दाकरं प्रेत्य	१	३९	३९
अन्यगेहरता क्रूरा	४	८०	३४५	उद्यत्प्रतापदिनक	१	५	५
अभ्यासः सर्वदा कार्यः	२	२९	११६	उपकारी विनयवान्	१	६५	६५
अमनोज्ञश्च दुर्विद्धो	४	१०१	३६६	उभयोः सन्ध्ययोः शेते	४	७७	३४२
अमर्षलोभमोहाद्यैः	२	६२	१४९	ऋणं कृत्वा व्ययं कुर्वन्	३	३५	२२९
अवाह्यवाहनान्नून	२	८७	१७४	एके च रोगैः परिभूतदे	४	१०५	३७०
अविज्ञातगृहे यान	३	२३	२१७	एकेऽप्येवंविधाः सन्ति	२	५८	१४५
अविमृश्यात्मनः सारं	३	३२	२२६	एकैकमप्यनर्थाय	१	६०	६०
अशुद्धपार्ष्णिर्यो राजा	२	३४	१२१	एतत् सत्यव्रतं नाम	१	३०	३०

श्लोक	तरंग	श्लोक	
ओसवाले कुले श्रीमान्न	१	८	८
कक्षा वक्षोऽथ वलयः	२	१०१	१८८
कथकः पक्षयुक्तश्च	१	६४	६४
कन्दाख्यं प्रथमं चक्र	४	१२७	३९२
कन्यां राजकुलोत्पन्नां	२	४१	१२८
कन्याप्रदाने शपथे	१	३३	३३
करनाशा(शं) पदच्छे	१	३७	३७
कर्मणा प्रेरितो जीवः	४	६	२७१
कलौ नृपा लोभनिवि	३	३	१९७
कस्मिन् देशे च गन्त	२	१९	१०६
कस्यचित्प्रार्थनाभङ्गो	१	६८	६८
कामलोभादिभिर्लोको	२	३०	११७
कार्यस्तु सततं सद्भि	३	३१	२२५
कीर्तिं लक्ष्मीं धृतिं	३	२१	२१५
कुमारत्वेऽपि यः स्वाज्ञां	२	४७	१३४
कुरुपाति सपत्नीषु	२	४२	१२९
कुरूपस्याप्यशीलस्य	३	१२	२०६
कुर्वन् कुव्यवहारं यो	३	८	२०२
कृच्छ्राद्विमोचयेत्	१	२६	२६
कृतघ्नाः स्वामिहन्तारो	३	३७	२३१
कृतदेहविशुद्धिश्च	२	१६	१०३
कृपणः पूर्णवित्तश्चे	३	२२	२१६
क्रूरं स्तब्धमसन्तुष्टं	२	२६	११३
खनित्वा करमात्रं हि	३	५९	२५३
गर्भे जरायुनिर्बन्ध	४	१०८	३७३
गव्यं घृतः सत्सलिलं	४	३९	३०४
गुरुदेवाग्नितर्वङ्घ्रि	३	३९	२३३
गुरुदेवार्चनं दानं	१	४७	४७

श्लोक	तरंग	श्लोक	
गुरुर्जीवबुधौ काव्य	४	५८	३२३
गुरुशुश्रूषको नित्य	१	५०	५०
गुरौ केन्द्रेऽथवा शुक्रे	३	६९	२६३
गुरौ देवे च दैवज्ञे	३	६	२००
गृहव्यापारनिरतैः	१	४३	४३
गृहे भवति चेद् भूरि	३	१४	२०८
गौतमस्वामिनः प्राप्तव	१	७	७
गौरा भाति च यस्य गौ	१	८७	८७
गौरा भाति च यस्य गौ	२	१०७	१९४
गौरा भाति च यस्य गौ	३	७१	२६५
गौरा भाति च यस्य गौ	४	१५०	४१५
ग्रासादिसप्तवारेषु	४	५६	३२१
चञ्चच्चन्द्रमरीचिभि	३	५६	२५०
चतुरङ्गे बले पूर्णे	२	३२	११९
चतुर्थं हृद्गतं कण्ठे	४	१२८	३९३
चतुर्विंशतितीर्थेशा	४	१३८	४०३
चतुर्विधस्याऽप्यङ्गानि	४	१३७	४०२
चन्द्रपुर्यां धनाख्येन	४	१४१	४०६
चापल्यादोजसस्तस्मिन्	४	११	२७६
चापोदये वीर्ययुतै	४	१४७	४१२
चित्तं नैकान्ततामेति	१	४४	४४
चिन्तयन्निति सङ्ग्रामो	१	१४	१४
चिह्नैः प्रत्यङ्गकथितै	२	१०४	१९१
जगज्जनमनोहरं	३	७०	२६४
जगदीशमहीपाल	१	७९	७९
जङ्घाद्वयं तथा पृष्ठं	४	७३	३३८
जयति जगत्त्रयज	२	१	८८
जयत्ययं सम्प्रति त	४	१४३	४०८

श्लोक	तरंग	श्लोक	
जिनपृष्ठे हरेर्वाम	३	५७	२५१
जिनाधिपं सर्वविदं	४	१	२६६
जेतव्यानीन्द्रियाण्यादौ	१	५८	५८
ज्योतिःशास्त्रमनादृत्य	४	४०	३०५
ढिल्यामल्लावदीने	४	१३९	४०४
तज्ज्येष्ठो नरदेव ए	४	१४२	४०७
तत्क्षणे द्रवरूपः स्यात्	४	७	२७२
तत्प्रत्यङ्गं मलाकीर्ण	४	१०७	३७२
तपस्विगुरुदेवर्षि	१	८३	८३
तपो ज्ञानं तथा दानं	१	२१	२१
तपो दानं यशः शौचं	१	२७	२७
तपोदानादिसिद्धिस्तु	१	२२	२२
तस्माच्च राजा सन्मानं	४	११३	३७८
तस्माच्छरीरे न हि रो	४	१६	२८१
तस्य च मालवदेशे	१	६	६
तस्याङ्गानि यमः सम्यक्	४	१३५	४००
ताम्बूलापूरितं वक्त्रं	४	७६	३४१
तीक्ष्णबुद्धिप्रदा स्वर्य्या	४	३४	२९९
तुरङ्गाः शतशो राज्ञा	२	९१	१७८
तुल्यसौन्दर्यगुणयो	२	४३	१३०
तृणच्छेदं नखैर्भूमि	४	७८	३४३
तृतीयो न भवेद्यस्तु	२	८५	१७२
त्यजेद्राजानमत्युग्रं	२	७४	१६१
त्यजेद्विषातुरो निद्रां	४	२९	२९४
त्रिकोण(ध)नस्रांशुगाः	४	६१	३२६
त्वग्दोषक्षयकासाक्षि	४	३०	२९५
दंष्ट्रामूले वराहाणां	४	९६	३६१
दया धर्मतरोर्मूलं	१	७३	७३

श्लोक	तरंग	श्लोक	
दयाधर्मं परित्यज्य	१	२५	२५
दयामूलेन धर्मेण	४	३	२६८
दुरमात्योपदेशेन	२	५०	१३७
दुराचारपरो धृष्टः	१	७४	७४
दुर्जनोक्तानि वाक्यानि	२	६१	१४८
दुर्लभं मानुषं प्राप्य	१	५६	५६
दुष्टदण्डः साधुपूजा	२	२७	११४
दूरतो निष्फला सेवा	२	७८	१६५
दृढं बद्धाः पाशैर्विवि	४	१०४	३६९
दृढप्रतिज्ञो मेधावी	२	१२	९९
देवतातिथिभक्तश्च	१	४६	४६
देवे गुरौ धर्मशास्त्रे	१	८२	८२
देशकालप्रभावानां	३	१०	२०४
देशान्तरगतैः सद्भि	३	२४	२१८
द्युतादिव्यसनेनैव	३	४४	२३८
द्विदैवादिचतुष्केषु	४	४७	३१२
द्विपाहिशुक्तिशङ्खाभ्र	४	८९	३५४
द्वैपायनादियोगीन्द्रैः	४	१२६	३९१
धनेनान्नेन वस्त्रेण	१	६९	६९
धनोत्पत्तिमनालोच्य	२	६४	१५१
धरणीतलनिक्षिप्त	३	१६	२१०
धर्माद्राज्यं यशो लक्ष्मीः	१	२०	२०
धर्मान्नयप्रवृत्तिः स्या	१	१८	१८
धर्मार्थव्यवहारेषु	१	२९	२९
धर्मेण राज्यलाभः स्या	२	७	९४
धर्मोपदेशपात्रं स्याद्	१	६६	६६
धातुवादकुवाणिज्य	२	७९	१६६
धीरः साहसिको मानी	३	४१	२३५

श्लोक	तरंग	श्लोक	
ध्रुवं धान्यं जयं नन्दं	३	६५	२५९
ध्रुवमैत्रेन्दुमूलान्त्य	४	४९	३१४
ध्वजो धूमस्तथा सिंहः	३	६१	२५५
न दानेन विना कीर्ति	३	११	२०५
न मन्यते गुरोः शिक्षां	२	८६	१७३
न येनाकारि विद्येयं	३	२०	२१४
न वाच्यं कुपिते राज्ञि	२	८०	१६७
न सभासु वदेत्प्राज्ञः	२	८४	१७१
नखताल्वधरापाङ्	४	७५	३४०
नखेषुभूसम्मितवि	४	१४६	४११
नदद्विजयदुन्दुभि	२	१०६	१९३
नन्दा भद्रा तथा पूर्णा	४	४२	३०७
नमः श्रीवीतरागाय	१	१	१
नयेत्कुण्डलिनीं च	४	१३३	३९८
नरदेवजसङ्ग्रामाङ्	४	१४४	४०९
नरदेवधनाख्यौ च	४	१४०	४०५
नरदेवहितां रम्यां	२	८	९५
नातिविस्तारमत्यन्त	१	१६	१६
नात्यन्तं विश्वसेत्स्त्रीषु	३	४६	२४०
नास्ति सत्यात्परा भूषा	१	३२	३२
नास्तिक्यलोभादियु	१	४९	४९
नित्यं परगृहे यानं	३	४९	२४३
निर्गुणानन्दतत्त्वस्या	४	१२०	३८५
निर्गुणोऽप्येष गुणवा	३	१३	२०७
निर्मांसो वदने प्रोथे	२	९२	१७९
निशीथे यस्तु जागर्ति	४	१२१	३८६
नृपमानाभिमानी	२	६३	१५०
नृपाधिकारी नृपतेर्नि	२	६५	१५२

श्लोक	तरंग	श्लोक	
नेत्रे विशाले मणिव	२	९३	१८०
पञ्चाङ्गं प्रातरुत्थाय	२	२१	१०८
पद्मासनाद्यासनेषु	४	१२४	३८९
परमात्मा हि सर्वज्ञो	१	२३	२३
परिणाहोच्चदैर्घ्येषु	२	१०३	१९०
परीक्ष्यकारी सोत्साहो	२	११	९८
परेङ्गितज्ञो धीरश्च	२	२५	११२
पर्वण्यष्टोत्तरशते	४	९७	३६२
पवनोन्मत्तमातङ्गं	४	१३०	३९५
पवित्रं तिमिजं मत्स्या	४	९५	३६०
पवित्रं षड्रसाकीर्णं	४	३८	३०३
पाणिपादतले पद्मं	४	७१	३३६
पार्थिवे मित्रता नास्ति	२	६९	१५६
पिङ्गलौलूककाकाश्च	४	६७	३३२
पिण्डस्थं च पदस्थं च	४	११६	३८१
पितरौ चेदनादृत्य	१	७७	७७
पित्रा सुशिक्षितः पुत्रो	२	४५	१३२
पूर्णकुम्भः प्रसूनानि	४	६५	३३०
पृथ्वीलाभे पुरं सारं	३	५५	२४९
पेशी मासे द्वितीये	४	८	२७३
प्रजा स्वजनयित्री	२	७२	१५९
प्रभावमात्मनो यस्तु	३	३३	२२७
प्रशंसार्थं हि दातारः	३	१८	२१२
प्रस्तावसदृशं दानं	३	१९	२१३
प्रस्थितोऽपि मुहूर्तेन	४	६३	३२८
प्रहरेत् सर्वथा स्त्रीषु	३	२९	२२३
प्राकारपरिखातोय	२	३१	११८
प्राणाचार्यवचः कुर्या	२	२२	१०९

श्लोक	तरंग	श्लोक	
प्रायो हि मणयः सर्वे	४	१००	३६५
बलदैत्याङ्गजातानि	४	८५	३५०
बहुलाभेऽपि तृष्णायाः	१	४५	४५
बाल्ये ततः पूतिगन्धि	४	१०९	३७४
बिभर्ति धरणीधवो	४	१०३	३६८
बिम्बाधराकुरङ्गाक्षी	४	८२	३४७
बुधशुक्रेन्दुजीवानां	४	४३	३०८
बोधितां पवनाघातैः	४	१३२	३९७
ब्रह्मरन्ध्रेऽष्टमं चक्रं	४	१२९	३९४
भद्रो मन्दो मृगश्चापि	२	९८	१८५
भर्तृभक्तिं परित्यज्य	३	४८	२४२
भवेद् गृहस्थः सततं	३	५	१९९
भाजने सुप्रदेशस्थे	४	९२	३५७
भुक्त्यादौ सलिलं पीतं	४	३६	३०१
भूयात् सदर्थसम्प	१	१३	१३
भोजङ्गं मौक्तिकं राज्ञां	४	९३	३५८
भ्रातृव्यं भ्रातरं पत्न्याः	३	४५	२३९
मघा विशाखा रौद्रं च	४	४६	३११
मधुसन्निभदन्ताश्च	२	१००	१८७
मधौ(माघे) मधुरम्	४	२२	२८७
महता तद्वचो वाच्यं	३	९	२०३
महान्तोऽपि विनश्यन्ति	१	४१	४१
महाभूतानि चन्द्रार्कौ	१	२८	२८
महामन्त्रादिकं मन्त्रं	४	१२५	३९०
महामन्त्रे च मन्त्रे च	४	११८	३८३
महिषी राजमाता च	२	७७	१६४
मानं विहाय वाल्लभ्यं	२	९०	१७७
मार्कण्डेयेन चाष्टाङ्गः	४	१३४	३९९
मार्गे यत्पतितं दृष्टं	१	३५	३५
मित्रभावेन यः कोऽपि	२	५५	१४२
मुखं लालाभिराकीर्णं	४	११२	३७७
मूर्खदत्तं कुभूमिस्थं	४	३५	३००
मूर्खमन्यायकर्तारं	२	५२	१३९
मूर्तिस्वरूपमालम्ब्य	४	११९	३८४
मूर्तौ चन्द्रसितौ धने	४	५९	३२४
मूलादितिस्वातिकरे	४	५३	३१८
मृगया द्युतपानानि	२	२८	११५
मृगो मीनः करी भृङ्गः	१	५९	५९
मृदुध्रुवगुरुस्वाति	३	६०	२५४
मेषको नक्रकन्याश्च	४	५७	३२२
मोघाऽपि प्रार्थना श्रेष्ठा	३	३४	२२८
यः परस्याऽधमर्णोऽपि	३	४०	२३४
यः पूर्वमेकवेगार्तो	४	२८	२९३
यः सौभाग्यं सार्वजन्य	२	८९	१७६
यत्नवानात्मरक्षासु	२	१४	१०१
यदि न स्याद् गृहे वित्त	४	३१	२९६
यस्तु राजकुमारोऽपि	२	४६	१३३
यस्तु लञ्चैकलोभेन	२	५७	१४४
यस्मिन् राज्ये प्रजापीडा	२	७३	१६०
यस्य दुर्गं बलं तस्य	२	३३	१२०
यस्य न ज्ञायते वित्तं	३	२६	२२०
यस्य स्त्रीरत्नभोगोऽस्ति	३	५२	२४६
यामे च पश्चिमे नित्यं	२	१५	१०२
यायिनोऽभीष्टदा ह्येते	४	६६	३३१
युक्तं समौ सज्जनदु	२	३	९०
ये चोपहासनिरताः	१	१७	१७

श्लोक	तरंग	श्लोक	
येषां प्रसादतः प्राप्ता	१	३	३
यो द्वेष्टि मनुजो मोहा	१	२४	२४
यो न वेत्ति नरः कार्ये	१	७८	७८
यो भुङ्क्ते मात्रया नित्यं	४	२५	२९०
योगश्चतुर्विधो मन्त्र	४	१२३	३८८
योगीन्द्रध्यानगम्यो	४	११५	३८०
यौवराज्ये श्रुते यस्य	२	४८	१३५
रक्तमांसविलिप्तानि	४	१०६	३७१
रत्नशब्दो गुणोत्कर्षा	४	८४	३४९
राजमानं समासाद्य	२	५६	१४३
राजवंश्योऽधिकारी वा	१	६७	६७
राजा दुष्टः सुतो मूर्खो	२	७५	१६२
राजा नेता न चेत्सम्यक्	२	७१	१५८
राजा राज्ञी कुमारश्च	२	९	९६
राजा वृद्धोपसेवी स्या	२	१०	९७
राज्ञा बाल्येऽपि पुत्रस्य	२	४४	१३१
राज्ञो निन्दापरो नित्यं	२	७६	१६३
रात्रावुलूकवशगः	२	३६	१२३
रेवत्यादितिकर्णेभ्यो	४	५०	३१५
लक्षणानि यमादीना	४	१३६	४०१
लग्ना१स्ता७रि६त्रि३तुर्येषु४	३	६७	२६१
लघूनपि च वर्द्धयन्	२	४०	१२७
लसत्प्रतिस्थानपुरे	४	१४८	४१३
लोभमोहविहीनश्च	१	६२	६२
वज्रं विलक्षणं सम्प	४	८७	३५२
वर्षाहिमग्रीष्मचितं	४	२१	२८६
वस्त्रपूतं पिबेत्तोयं यः	४	३७	३०२
विण्मूत्रनिद्रावमिका	४	२७	२९२
विद्वद्गोष्ट्या सरसया	३	४३	२३७
विनापि जन्मसमयमु	४	७०	३३५
विनावसरमन्तर्यो	२	६८	१५५
विनिर्जितेन्द्रियग्रामः	१	५२	५२
विरक्तां वनितां मूढां	३	४७	२४१
विलोक्य लोकान्	३	४	१९८
वीर्येऽधिके भवेत्पुत्रः	४	१४	२७९
वृत्तिहीनं पदभ्रष्टं	४	१८	२८३
वृथा परापवादादि	१	८१	८१
वेदषण्नवदिक्सङ्ख्ये	४	४८	३१३
वैरिणामपि भूपाल	३	३०	२२४
व्यययुक्ते फले तस्मिन्	३	६४	२५८
व्ययाऽष्टमगताः सौम्या	४	६०	३२५
व्यवहारेऽधिकारे वा न	१	८०	८०
व्याधिर्वैश्वानरो वादो	३	३६	२३०
व्याधेः कर्मविपाकोक्त	४	१५	२८०
व्यापारकोटिभारेण	३	५४	२४८
व्यापारी गणनालेख्ये	२	६६	१५३
शङ्खवेणुवराहेभ	४	९८	३६३
शङ्खोद्भवं सुवृत्तं स्या	४	९४	३५९
शत्रोरुन्मूलनं कार्यं	२	३८	१२५
शत्रोश्च सुहृदो वापि	२	८८	१७५
शरीरसुखलोभेन	२	५४	१४१
शरीरं न विना ज्ञान	४	५	२७०
शरीरं रोमशं यस्या	४	८१	३४६
शरीरसंस्कारपरो	१	५१	५१
शास्तारो बहवो यत्र	३	२५	२१९
शिखिकण्ठालिवर्णो यो	४	१०२	३६७

श्लोक	तरंग	श्लोक		श्लोक	तरंग	श्लोक	
शीतं सुधोपमं स्वच्छं	४	३२	२९७	सङ्ग्रामाद्विमुखस्यास्य	२	८३	१७०
शीलं न खण्डनीयं, न	१	८५	८५	सङ्ग्रामे नरदेवजे	४	१४५	४१०
शुकपारापतश्येन	१	७१	७१	सङ्ग्रामे विजयः पुण्यं	२	४९	१३६
शुक्रः स्वोच्चगतो जीवो	३	६८	२६२	सङ्ग्रामो नवनीरद	२	५९	१४६
शुक्रज्ञारशनीज्येषु	४	४४	३०९	सङ्ग्रामो रचयत्येत	१	१०	१०
शुक्रशोणितयोः साम्ये	४	१३	२७८	सङ्ग्रामोक्तहितैर्येषां	२	६	९३
शुचिधौताम्बरधरो	१	४८	४८	सत्या सुसंस्कृता वाणी	१	३१	३१
शुभं वचनमर्चितं	४	८३	३४८	सदा सर्वेषु भैषज्ये	४	३३	२९८
शुभकर्म तथा यानं	४	५५	३२०	सदाचारपरा नित्यं	४	७९	३४४
शुभे सकलकर्मणि	४	६२	३२७	सद्गुरोः सन्निधौ	४	१३१	३९६
शूरो धीरः सुगतिमान्	२	१०५	१९२	सद्धर्मनयशुद्धार्थ	१	१२	१२
शेषतक्षकयोर्वंश्या	४	९१	३५६	सद्धर्मशास्त्रार्थविवे	३	२	१९६
श्यामं वैष्णवमिन्द्रदै	४	९९	३६४	सद्वैद्यकार्थामृतस	४	२	२६७
श्रीमद्दक्षिणभूपतिं	४	१४९	४१४	सन्धिश्च विग्रहो यानं	२	३५	१२२
श्रीरत्नसिंहसूरेः प	१	४	४	सपुत्रा स्त्री सवत्सा गौ	४	६४	३२९
श्रीवीतरागपदप	२	२	८९	सबलस्तरुणः शूरः	२	९६	१८३
श्रुतं दृष्टं स्मृतं चापि	३	५३	२४७	समये व्यवसायस्तु	३	२७	२२१
श्रुते तत्त्वेऽप्यनभ्यासो	४	१२२	३८७	समीपे राजगेहस्य	३	५८	२५२
श्रुत्वा सदुपदेशाँश्च	३	१५	२०९	सम्पत्कुलबलैश्वर्य	१	५७	५७
श्रेयस्कारि मनोहारि	१	७५	७५	सम्पुष्टसर्वावयवः	४	११०	३७५
श्वेतं द्विजानां हितकारि	४	८८	३५३	सर्पाग्निवारुणर्क्षैश्च	४	५२	३१७
स कथं कथ्यते सद्भि	२	६०	१४७	सर्वकल्याणरूपाय	१	२	२
स पण्डितः स गुणवान्	१	४२	४२	सर्वतीर्थमयौ ज्ञेयौ	१	७६	७६
स प्राप्नोत्यपमृत्युं यो	४	४	२६९	सर्वद्रव्यैरभेद्यं य	४	८६	३५१
संसारसिन्धुतरणे	२	१७	१०४	सर्वव्यसननिर्मुक्तो	२	१३	१००
सगर्भा स्त्री रथो भग्नः	४	६८	३३३	सर्वसङ्गविनिर्मुक्तो	१	५३	५३
सङ्क्रान्त्युभयतो याम	४	५४	३१९	सर्वाङ्गपरिपूर्णोऽयं	४	१०	२७५
सङ्ग्रामसिंहोक्तसुवृत्त	३	१	१९५	सर्वाङ्गव्यक्तता तुर्ये	४	९	२७४

श्लोक	तरंग	श्लोक	
सहात्मकर्ममर्मज्ञै	२	७०	१५७
सा क्रीडा नैव कर्तव्या	१	७२	७२
साभिलाषं परस्त्रीणा	१	४०	४०
सारमुद्धृत्य तेभ्यस्तु	१	९	९
सीतेव प्रियविप्रियं	३	५१	२४५
सुजन्मविमले कुले	१	८६	८६
सुज्ञातं भक्षयेद्दन्तकाष्टं	२	२०	१०७
सुदृष्टिदानसन्मानैः	२	२३	११०
सुन्दरावयवैर्युक्ता	२	९९	१८६
सुभटः स्वामिनं मुक्त्वा	२	८१	१६८
सुवर्णं रौप्यमन्नं वा	१	३६	३६
सुवर्णालङ्कृता शुद्धा	२	४	९१
सुवृत्तरत्ननिचयैः	१	११	११
स्तावं स्तावं कदर्थित्वं	३	१७	२११
स्निग्धरोमोद्गमः पृष्ठे	२	९४	१८१
स्मशाने च नदीतीरे	४	१९	२८४
स्वधर्माचारनिरतः	१	६१	६१
स्वयमङ्गीकृतं पूर्णं	१	१५	१५
स्वरः सत्त्वं तथा नाभ	४	७२	३३७
स्वराष्ट्रे परराष्ट्रे च मि	२	२४	१११
स्वसेवावसरे राज	२	६७	१५४
स्वस्थेन प्रातरुत्थाय	४	१७	२८२
स्वामिनोऽर्थे गतप्राण	२	८२	१६९
हन्ति सिंहं जले नक्रः	२	३७	१२४
हस्ताङ्घ्रिद्विजकर्णेषु	२	१०२	१८९
हस्तो मार्गं च दास्त्रं च	४	४५	३१०
हिताहारविहारेषु	४	२०	२८५
हिमागमेऽतिनिद्रालुः	४	२३	२८८
हीनाङ्गं कर्दमालिप्तं	४	६९	३३४

परिशिष्ट-२

संदर्भग्रंथ सूचि

- A Brief Historical Survery of Jainism and its Contribution to Indian Culture, K.C.Jain, New Delhi, 1998, pp. 30-39
- A Comprehensive History of Jainism, Asimkumar Chaterjee, Vol.2, Calcutta, 1984, 3 or 4
- Ancient cities and Towns of Rajasthan Delhi, K.C. Jain, 1972, pp.10-16, 577-81
- Chalukyas of Gujarat, A.K.Majumdar, Bombay, 1956, pp.28-42, 67ff., 94-100, 121-27
- Contribution of Jainism to the History of Malawa, Nizami A.H., (Shodha Sadhana) 1986, pp. 85-90
- Delhi Sultanate (C.H.I.,Vol. V), Ch.11-12
- Delhi Sultanate (History and Culture of Indian People, Vol. VI), Bombay, 1980, Ch2-5
- Delhi Sultanate, A Comprehensive History of india (C.H.I.,Vol.V), Delhi, 1982, Ch.3-8
- Epigraphs Sholapur, 1957 (relevant references)
- Important Jaina, P.N. Murthy
- Jain Inscriptions of Rajasthan, Somani Rajvallabh, Jodhpur, 1970, pp. 196-98
- Jain Jyotiprakash, op. cit., Mediaeval and Modern Ages
- Jaina Art in Karnataka, Raghunath Bhat, pp. 33-43
- Jaina Monuments in Southern Karnataka, M.S. Krishnamurthy, pp.56-116
- Jainism in Gujarat, Sheth, Bombay, pp. 173-80, 221ff Gandhi S.B., Collections of Historical Writing, pp. 272ff.
- Jainism in Rajasthan, K.C. Jain, Sholapur, 1963, Ch.3
- Jainism, Saletor B.A., Bombay, 1938 (relevant referencess)
- Mediaeval Malwa, Upendra De, Delhi, pp. 367-70
- Mugal Empire (History and Culture of indian People, Vol.7), Bombay, 1974, Ch.3-8

- Outlines of South Indian History, M.N. Ramanappa, New Delhi, 1975, Ch.18-19
- Prabandh Chintamani, Edited by Muni Jinvijay, (Merutunga)- Eng. Trans- Tawney, Calcutta, 1901, pp. 65ff. 84ff.,116ff. 151-55
- Rajasthan through the Ages, G.N. Sharma, Vo. 2, Bikaner, 1990, No. Ch. 11, pp. 335-37
- Rise of Muslim power in Gujarat , S.C.Mishra, (1298-1442), Bombay, 1960
- Rulers and Their Contribution, pp. 44-45
- Seminar on Jaina Heritage of Karnataka, Rishabha Saurabha, Rishabha Foundation, Delhi, 1994 The following articles published in it Narasimha
- Studies in South Indian Jainism, Ayyangar and Sheshgiri, Madras, 1922 (relevant references) Desai P.B., Jainism in South India and Some Jaina
- The Cambridge Shorter History of India, Alan. Haig, Dodwell and Sethi, Delhi, 1958, pp.234-40
- आधुनिक इतिहास के संदर्भ में मालवा (Janadharma, Malwa Special (Issue), गुरु शंभुदयाल, भोपाल, 1990, pp. 43-51) (Hindi)
- उज्जैयिनि का संस्कृति का इतिहास, कनुगो शोभा, इंदौर, 1972, pp.224-32
- काल के दृष्टि से राजस्थान,शर्मा ज.न., भाग.2, प्र.14, pp. 383-406
- खरतरगच्छ का आदि-कालीन इतिहास, चंद्रप्रभ सागर, देहली, 1990, pp. 16-20
- खरतरगच्छ गुर्वावलि (जिनपाल) संपादक- मुनि जिनविजय, मुंबई, 1956, pp. 52-59
- जैन ग्रंथ प्रशस्ति, मुख्तार जुगलकिशोर और जैन पी. देहली, 1954, pp. 116ff., 189-200
- जैन धर्म का मौलिक इतिहास, गजसिंह राठोड, भाग.4, जयपुर, 1981, pp. 627-29
- जैन धर्म का मौलिक इतिहास,राठौड गजसिमहा, भाग 3, जयपुर, 1981, pp. 136-38, 711, 783
- जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह, भाग.1, मुम्बई, 1943, Nos. 47-48, 72-73, 131-34, 137
- जैन लेख संग्रह, भाग 2, संपादक-मुनि जिनविजय, भावनगर, 1921, Nos.26, 29, 131-32, 170-74, 264-65, 267
- तपागच्छ श्रमणीय वंशवृक्ष, अहमदाबाद, जयन्तिलाल शाह, वि.स. 2452 (Geneology)
- दक्षिण भारत का इतिहास (Trans. वीरेन्द्र वर्मा) क.अ.निलकंठ शास्त्री प्र.क्र. 9-12
- पट्टावलि समुच्चय (संपादक- मुनि जिनविजय), अहमदाबाद, 1950 (relevant references)
- पट्टावलि पराग संग्रह, कल्याणविजयगणि, जालोर, 1966, pp. 182-86

- पुरातन प्रबंध संग्रह (जिनप्रभसू.), संपादक-मुनि जिनविजय, कोलकाता, 1936, pp. 10, 31-34, 51-52, 99, 108-13, 116, 124
- प्रभावक चरित्र (प्रभाचंद्र), संपादक- मुनि जिनविजय, अमदाबाद, 1940, pp,30, 181-84, 195-206
- प्रमुख ऐतिहासिक पुरुष एव महिलाएँ, ज्योति जैन प. देहली, 1975, pp. 223-29
- प्राचीन जैन लेख संग्रह, खंड २, Nos.34-35, 447
- भारत का इतिहास(१०००-१७०७ AD), आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, आगरा, १९७९, प्र.क्र. २१-२४
- भारत का नवीन इतिहास, निगम श्यामसुंदर, आगरा, १९७०, द्वितीय भाग, प्र.क्र. ६
- भौंराका संपद्राय, जोहारापुरकर विद्याधर, सोलापुर, 1953 (संबंधित संदर्भ)
- मध्यकालीन भारत, हरिश्चन्द्र वर्मा, देहली, १९८५, प्र.क्र. ४-६
- मध्यकालीन मालवा में जैन धर्म, डॉ जैन प्रकाशचंद्र (M.M.J.D) De U.N., op. cit. Appendix, Typed thesis, 1992, pp. 63-119
- मध्यकालीन राजस्थान मे जैन धर्म (म.रा.जै.ध), राजेश जैन, टंकित प्रबन्ध , 1988, pp.42-84
- मालवांचाल के जैन-लेख, लो.द. नंदलाल संपादक- श्यामसुंदर निगम, उज्जैन, 1995, pp.18-20
- विविध तीर्थकल्प (जिनप्रभसू.), संपादक- मुनि जिनविजय, शांति निकेतन, 1934 (समर्पक संदर्भ)

प्राचीन श्रुतसंपदाना समुद्धार अर्थे

समुदार सहयोग आपनारा महानुभावोनी नामावली

श्रुतसमुद्धारक

श्रीमती चंद्रकलाबेन सुंदरलाल शेठ परिवार (मांगरोळ हाल-पुणे)

श्रुतरत्न

श्री भाईश्री (इंटरनेशनल जैन फाउंडेशन - मुंबई)

स्व.मंजुलाबेन तथा जयंतीलाल गोसालिया, बहेन हेमांगिनीनी स्मृतिमां

राजेश गोसालिया (मांगरोळ हाल-दुबइ)

श्रुतसंरक्षक

श्री हसमुखभाई दीपचंदभाई गार्डी (दुबई)

श्रुतस्तंभ

पू.सा.श्री हर्षरेखाश्रीजी म.नी प्रेरणाथी श्रीमती वसंतप्रभाबेन कांतिलाल (पुणे)

पू.आ.श्री विश्वकल्याणसू.म.नी प्रेरणाथी श्री पद्ममणि जैन श्वे.मू. ट्रस्ट

पू.आ.श्री राजरत्नसू.म.नी प्रेरणाथी श्री जवाहरनगर श्वेतांबर मूर्तिपूजक जैन संघ (गोरेगाव, मुंबई)

श्रुतभक्त

श्री शांतिकनक श्रमणोपासक ट्रस्ट (सुरत)

श्री हसमुखलाल चुनिलाल मोदी चॅरिटेबल ट्रस्ट (तारदेव, मुंबई)

श्री पार्श्वनाथ श्वेतांबर मूर्तिपूजक जैन संघ (मुंबई)

श्रुतप्रेमी

श्री गोडीजी टेम्पल ट्रस्ट (पुणे)

श्री गोडीजी टेम्पल ट्रस्ट (पायधुनी-मुंबई)

श्री रतनचंदजी ताराचंदजी परमार (पुणे)

श्री मोहनलालजी गुलाबचंदजी बांठीया (पुणे)

श्री नगराजजी चंदनमलजी गुंदेचा (पुणे)

श्री नेमीचंदजी कचरमलजी जैन (पुणे)

श्री भरतभाई के. शाह (सुयोग ग्रुप-पुणे)

श्री सोहनलालजी टेकचंदजी गुंदेचा (पुणे)

श्री सुखीमलजी भीमराजजी छाजेड (पुणे)

श्री जैन आशापुरी ग्रुप (पुणे)

श्री महेन्द्र पुनातर (मुंबई)

श्री सुधीरभाई चंदुलाल कापडिया (मुंबई)

श्री संजयभाई महेन्द्रजी पुनातर (मुंबई)

प्रो.श्रीमती विमल बाफना (पुणे)

पू.सा.श्री नंदीयशाश्रीजी म.नी प्रेरणाथी श्री आंबावाडी जैन संघ (अहमदाबाद)

श्री गोवालीया टेंक जैन संघ (मुंबई)

श्री मोतीशा लालबाग रिलीजीयस चेरिटेबल ट्रस्ट (भायखला, मुंबई)

श्री ऋषभ अपार्टमेंट महिला मंडल, (प्रार्थना समाजमुंबई)

पू.आ.श्री तीर्थभद्रसू.म.नी प्रेरणाथी

जे. सी. कोठारी देरासर जैन श्वेतांबर मूर्तिपूजक संघ (मलाड, मुंबई)

श्री अशोक कालिदास कोटेचा (अमदावाद)

जैन श्वेतांबर मूर्तिपूजक संघ (दहाणुकरवाडी, कांदीवली, मुंबई)

श्री विमलनाथस्वामी जैन श्वेतांबर मूर्तिपूजक जैन संघ (बिबवेवाडी, पुणे)

श्री मुनिसुव्रतस्वामी श्वेतांबर मूर्तिपूजक जैन संघ (लेकटाउन सो., पुणे)

श्री श्वेतांबर मूर्तिपूजक जैन संघ (सोलापुर बजार,पुणे)

श्री जैन श्वेतांबर मुर्तिपूजक गुजराती पंच (मालेगांव, नाशिक)

श्रुतोपासक

श्री अर्थप्राईड जैन संघ (मुंबई)

पू.आ.श्री कलाप्रभसागरसू.म.नी प्रेरणाथी श्री मुलुंड श्वेतांबर मूर्तिपूजक जैन संघ (मुंबई)

पू.मु.श्री जिनरत्नवि.म.नी प्रेरणाथी श्री आदिनाथ सोसायटी जैन संघ (पुणे)

पू.सा.श्री सूर्यमालाश्रीजी म.नी प्रेरणाथी श्री सम्यक् साधना रत्नत्रय आराधक ट्रस्ट (अमदावाद)

पू. उपा. श्री जितेंद्रमुनिजी म.नी प्रेरणाथी श्रीमती सीमा जैन (होशियारपुर, पंजाब)

श्री वर्धमानस्वामी जैन चेरिटेबल ट्रस्ट (सदाशिव पेठ, पुणे)

पू.आ.श्री तीर्थभद्रसू.म.नी प्रेरणाथी मातुश्री कमळाबेन गिरधरलाल वोरा परिवार (खाखरेची-मुंबई) आयोजित उपधान तप समिति

पू.आ.श्री तीर्थभद्रसू.म.नी प्रेरणाथी मातुश्री मानुबेन माडण गुणसी गडा परिवार

(थोरीयारी- मुंबई) आयोजित उपधान तप समिति

श्रुतानुरागी

श्री मुनिसुव्रतस्वामी श्वेतांबर मूर्तिपूजक जैन संघ (फातिमानगर, पुणे)

श्री जैन आत्मानंद सभा (फरिदाबाद-पंजाब)

पू.मु.श्री जिनरत्नवि.म.नी प्रेरणाथी श्रीजिनरत्न आनंद ट्रस्ट

गोत्रीरोड श्वेतांबर मूर्तिपूजक जैन संघ (वडोदरा)

श्री श्वेतांबर मूर्तिपूजक जैन संघ (गोरेगाव, मुंबई)

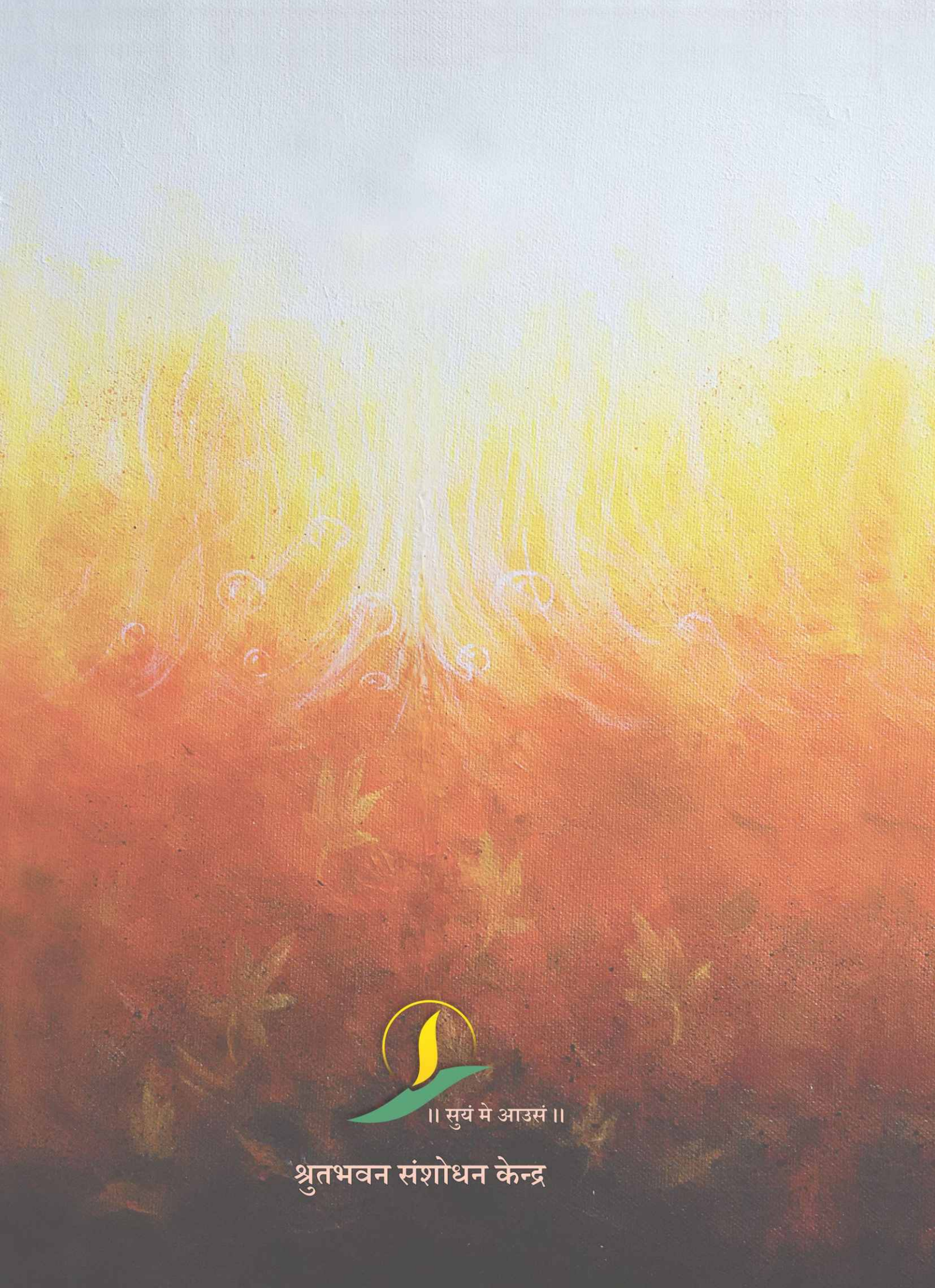
।। सुयं मे आउसं ।।
श्रुतभवन संशोधन केन्द्र